रामायण सूक्तिसुधा

सुभाष विद्यालंकार

॥ ओ३म् ॥

रामायण
सूक्तिसुधा

संकलन और सम्पादन

सुभाष विद्यालंकार

संस्कार प्रकाशन

ISBN : 81-7077-060-2

प्रकाशक : संस्कार प्रकाशन
4408, नई सड़क, दिल्ली – 110006

संस्करण : 2002

शब्द-संयोजन : **वैदिक प्रेस**, कैलाशनगर, दिल्ली-31

मूल्य : 195.00 रु०

मुद्रक : **स्पीडोग्राफिक्स**, दिल्ली

RAMAYANA SUKTISUDHA *by* Dr. Subhash Vidyalankar

समर्पण

भारतीय संस्कृति और संस्कृत के

निष्ठावान् साधक

बन्धुवर श्रीकृष्ण जी सेमवाल को

आदर और स्नेह सहित ।

डॉ० सुभाष विद्यालंकार-परिचय

पूर्व कुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरद्वार मण्डी धनौरा (मुरादाबाद) के सुशिक्षित और सम्पन्न परिवार में १५ जनवरी, १९२९ को जन्म ।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय और आगरा विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् पत्रकारिता, कानून, उच्च शिक्षा, जनसम्पर्क, प्रशासन, प्रकाशन और समाज सेवा आदि अनेक क्षेत्रों में सक्रिय भूमिका ।

भारत सरकार के राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान और दिल्ली संस्कृत अकादमी की बहुआयामी गतिविधियों से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध ।

भारत सरकार की 'इण्डियन इन्फोर्मेशन सर्विस' में २७ वर्षों से अधिक काम करने के उपरान्त राजनीतिक उत्पीड़न के कारण निदेशक, जनसम्पर्क पद से त्यागपत्र देकर सर्वोच्च न्यायालय में कई वर्षों तक वकालत का व्यवसाय ।

अन्तरराष्ट्रीय और अखिल भारतीय संस्कृत सम्मेलनों, विश्वविद्यालयों तथा सामाजिक और सांस्कृतिक संस्थाओं द्वारा समय-समय पर आयोजित विचार गोष्ठियों में सम्बोधन ।

इंग्लैण्ड के कैम्ब्रिज, ऑक्सफोर्ड और लन्दन विश्वविद्यालयों तथा अमेरिका के येल, न्यूयार्क और जार्जटाउन विश्वविद्यालयों के प्राच्य शास्त्र अध्ययन विभागों की सरस्वती यात्राएं ।

'एनसाइक्लोपीडिया आफ हिन्दूइज़्म' में वेदाङ्ग से सम्बद्ध लेखों का प्रकाशन ।

अधिकांश भारत की यात्रा के अतिरिक्त हिमालय में अनेक बार पर्वतारोहण ।

ब्रिटेन और उत्तरी अमेरिका के अतिरिक्त यूरोप, दक्षिणी अमेरिका और दक्षिण पूर्व एशिया के देशों की यात्राएं ।

योग, अध्यात्म और संस्कृत साहित्य के अध्ययन में विशेष रुचि ।

—पद्मश्री महामहोपाध्याय डा० सत्यव्रतशास्त्री

विषय सूची

प्राक्कथन

संस्कृत की एक सुप्रसिद्ध उक्ति है **"रामादिवद् वर्तितव्यं न रावणादिवत्"** (व्यक्ति को) राम आदि की तरह व्यवहार करना चाहिए रावण आदि की तरह नहीं । इसी में सम्पूर्ण रामकथा का सार है । इसमें राम आदि, आदि से भरत, लक्ष्मण, हनुमान् प्रभृति के गुणों का अपनाना और रावण आदि के अवगुणों का परिहार अभिप्रेत है । रामायण का प्रारम्भ ही गुणों की परिगणना से होता है । वाल्मीकि, नारद से अपने समय के एक ऐसे व्यक्तित्व के बारे में जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं जिसमें अनेक गुण हों । वे गुणों को गिनाते चलते हैं । एक-एक कर वे सत्रह गुणों का उल्लेख करते हैं । उत्तर में नारद प्रसन्न मुद्रा में श्रीराम का नाम लेते हैं और उनके गुणों का बखान करते हैं । बाल्मीकि ने तो सत्रह गुणों का ही उल्लेख किया था । नारद अपने अभीष्ट व्यक्तित्व में सढसठ गुणों का उल्लेख करते हैं जिनमें शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक तथा चारित्रिक सभी सम्मिलित हैं । वाल्मीकि को इसी व्यक्तित्व की जीवनगाथा कहनी है । इसी का ही आदेश उन्हें ब्रह्मा जी से मिला है । इस जीवन-गाथा में इतने मोड़ हैं, इतने पड़ाव हैं, इतने उतार-चढ़ाव हैं कि यह अनेक स्थलों पर एक व्यक्ति विशेष की जीवन गाथा न रहकर जनसाधारण की जीवनगाथा बन जाती है और श्रोता, पाठक या दर्शक (रामायण की यदि मञ्च प्रस्तुति की जाती है) को यह लगने लगता है कि उसमें बहुत कुछ उसी तरह का हो रहा है जो उसके अपने जीवन में घट रहा है। इस बिन्दु पर उस गाथा का साधारणीकरण हो जाता है । यही साधारणीकरण लेखक के रूप में वाल्मीकि का भी हुआ और उन्होंने काव्योद्भूत तथ्यों को सामान्य रूप देकर प्रस्तुति की । यह प्रस्तुति ही उनकी कृति में सुभाषितों या सूक्तियों के उद्गम का मूल है।

ये सूक्तियां केवल रामायण की ही विशेषता हों यह बात

नहीं । प्रत्येक संस्कृत कृति में ये उपलब्ध हैं । प्राय: लेखक विषय विशेष का प्रतिपादन करते-करते कुछ मूलभूत सिद्धान्तों का भी प्रतिपादन कर देता है । यही सूक्तियां कहलाती हैं । रामायण इन सूक्तियों का भण्डार है। लगभग हर विषय का स्पर्श इनमें है ।

१८ वर्ष पूर्व पितृचरण **श्री चारुदेव शास्त्री जी** ने **'रामचरितामृतम्'** नाम से रामयणीय राम-कथा का सार प्रस्तुत किया था । उस सार की प्रस्तुति उन्होंने इस रूप में की थी कि उसमें उपदेशपरक कथाओं पर उनका बल था । इस रूप में पर्याप्त रामायणीय सूक्तियां उसमें आ गईं थी पर स्वतन्त्र रूप से सूक्ति संग्रह का उनका प्रयास नहीं था । यह प्रयास तो किया है प्रस्तुत कृति के माध्यम से श्री सुभाष विद्यालंकार जी ने ही । जहां तक इन पंक्तियों के लेखक की जानकारी है यह इस दिशा में पहला प्रयास है ।

श्री सुभाष विद्यालंकार जी ने सूक्तियों का विषय की दृष्टि से वर्गीकरण भी किया है जिससे अपनी रुचि के विषय की सूक्ति सामग्री रामायण में कहां और कितनी है इसकी जानकारी पाठक को हो जाती है । अन्यथा सम्पूर्ण रामायण का अवगाहन उसे करना पड़ता जिसके लिए समय उसके पास कहां है ।

जिन्हें संस्कृत की विशेष जानकारी नहीं है उनकी सुकरता के लिए श्री विद्यालंकार जी ने हिन्दी अनुवाद भी दे दिया है । इस अनुवाद में उनकी दृष्टि अर्थ को अधिकाधिक स्पष्ट करने की रही है जिसने ग्रन्थ को बहुत उपयोगी बना दिया है ।

सूक्तियों की दृष्टि से रामायण का अपना महत्त्व है । इनमें से अनेक तो मुहावरा बन गई हैं । जब एक बार बात कह दी गई तब पुन: उसके कहने की आवश्यकता नहीं इस भाव को अभिव्यक्त करने के लिए अनायास ही मुख से निकल पड़ता है **'रामो द्विर्नाभिभाषते'** । इसी तरह मित्रता करना तो आसान है पर उसे निभाना कठिन है इस भाव के लिए व्यक्ति सहज ही कह देता है **'सर्वथा सुकरं मित्रं दुष्करं प्रतिपालनम्'** ।

महर्षि वाल्मीकि ने अनेक स्थलों पर अपने समय की

प्रचलित लोकोक्तियों का रामायण में सन्निवेश कर स्व-समकालिक चिन्तन की भी एक झांकी प्रस्तुत कर दी है। ये लोकोक्तिया हैं इसका संकेत उन्होंने लोकः प्रवाद, लोकश्रुति, लोकप्रवाद, लौकिकी-गाथा, किल आदि शब्दों का प्रयोग कर किया है–

(१) **न हि निम्बात् स्त्रवेत्क्षौद्रं लोके निगदितं वचः ।**

(अयोध्या ३५।१७)

(२) **सत्यश्चात्र प्रवादोऽयं लौकिकः प्रतिभाति मा ।**
पितॄन् समनुजायन्ते नरा मातरमङ्गनाः ॥

(अयोध्या ३५।२८)

(३) **श्रुतिस्तु खल्वियं सत्या लौकिकी प्रतिभाति मे ।**
यदन्नः पुरुषो भवति तदन्नास्तस्य देवताः ॥

(अयोध्या १०४।१५)

(४) **अन्तकाले हि भूतानि मुह्यन्तीति पुरा श्रुतिः ।**
राज्ञैवं कुर्वता लोके प्रत्यक्षा सश्रुतिः कृता ॥

(अयोध्या १०६।१३)

(५) **विधि किल नरं लोकेविधानेनानुवर्तते ।**

(किष्किन्धा ५६।४)

(६) **कल्याणी बत गाथेयं लौकिकी प्रतिभाति माम् ।**
एति जीवन्तमानन्दो नरं वर्षशतादपि ॥

(युद्ध १२६।२)

(७) **मन्त्रमूलं च विजयं प्रवदन्ति मनस्विनः ।**

(युद्ध ६।५)

रामायण की कतिपय सूक्तियां इतनी लोकप्रिय हुई हैं कि परवर्ती अनेक ग्रन्थकारों ने उन्हें उद्‌धृत किया है और वह भी पाठभेद के साथ जो कि समय के साथ उनमें आ गया होगा। एक सूक्ति तो रामायण में ही केवल एक पद के अन्तर के साथ दो बार उपलब्ध होती है। अरण्यकाण्ड में यह सूक्ति इस प्रकार है–

सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः ।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता भोक्ता च दुर्लभः ॥

(अरण्य ३७।२)

और युद्धकाण्ड में इस प्रकार–

सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः ।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥

(युद्ध १६।२१)

यहां अरण्यकाण्ड के भोक्ता के स्थान पर श्रोता का प्रयोग है । शेष पद्य वही का वही है ।

युद्धकाण्ड के स्वरूप का यह पद्य ही महाभारत (उद्योग पर्व ३७।१५) तथा पञ्चतन्त्र (मित्रसम्प्राप्ति १६९) में प्रयुक्त हुआ है ।

रामायण की सूक्ति–

यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महोदधौ ।
समेत्य च व्यपेयातां कालमासाद्य कञ्चन ॥

(अयोध्या १०५।२६)

अन्तिम चरण में परिवर्त्तन के साथ महाभारत में इस रूप में उपलब्ध होती है–

यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महोदधौ ।
समेत्य च व्यपेयातां तद्वद् भूतसमागमः ॥

(शान्तिपर्व २०।३६)

रामायण की सूक्ति

सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः ।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं हि जीवितम् ॥

(उत्तर ५२।११)

का केवल अंश–'**संयोगा विप्रयोगान्ताः**' महाभारत में भी उसी रूप में दृष्टिगोचर होता है–

संयोगा विप्रयोगान्ता जातानां प्राणिनां ध्रुवम् ॥

(शान्तिपर्व २७।३०)

रामायण की सूक्ति

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धाः, वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम् ।
नासौ धर्मो यत्र न सत्यमस्ति, न तत्सत्यं यच्छलेनानुविद्धम् ॥

(उत्तर ५९।३३)

महाभारत में अन्तिम पाद के अन्तिमपद

न तत्सत्यं यच्छलेनाभ्युपेतम् । (उद्योगपर्व ३५।५८)

के पाठभेद के साथ उपलब्ध है ।

इसी प्रकार रामायण की सूक्ति–

पुन्नाम्नो नरकाद् यस्मात् त्रायते पितरं सुतः ।
तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः पितॄन् यः पाति सर्वतः ॥

(अयोध्या १०७।१२)

अन्तिम पाद के परिवर्त्तन के साथ मनुस्मृति (९।१३९) में इस रूप में उपलब्ध है–

तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा ।

इस सबसे स्पष्ट है कि रामायण की सूक्तियों ने भारतीय चिन्तन को कितना प्रभावित किया है ।

इन सूक्तियों को संकलित किया है सुप्रसिद्ध संस्कृतमनीषी श्री सुभाष विद्यालंकार जी ने । जन साधारण की बोधगम्यता के लिए उन्होंने इनका हिन्दी अनुवाद भी दिया है जो अत्यन्त स्पष्ट तथा सरल है और सूक्तियों के भाव पकड़ने का सफल प्रयास है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि उनका यह सूक्ति संग्रह सन्दर्भ ग्रन्थ का काम करेगा और अतीव लोकप्रिय होगा ।

इस श्रेष्ठ संकलन को प्रस्तुत करने हेतु श्री सुभाष विद्यालंकार हार्दिक साधुवाद के पात्र हैं ।

सत्यव्रत शास्त्री
मानद आचार्य, संस्कृत अध्ययन केन्द्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली
तथा
पूर्व कुलपति, **श्री जगन्नाथ संस्कृत विश्वविद्यालय**
पुरी, उड़ीसा

नई दिल्ली
२३ मार्च २००२

रामायण-परिचय

प्राचीन भारतीय परम्परा के अनुसार महर्षि वाल्मीकि की रचना रामायण को संसार की सबसे पहली काव्यकृति माना जाता है । 'वाल्मीकीय रामायण' भारत की वस्तुतः राष्ट्रीय निधि है । इस आदि काव्य को समस्त काव्यों का मूल आधार अथवा बीज कहा गया है–

काव्यबीज सनातनम् । (बृहद्धर्मपुराण १।३०।४७)

महर्षि वेदव्यास आदि कवियों ने रामायण का अध्ययन करके अपने काव्यों की रचना की । के.एस. शास्त्री ने अपने ग्रन्थ **'स्टडीज इन रामायण'** में (रामायण का अध्ययन) 'रामायण-तात्पर्यदीपिका' का उल्लेख किया है और कहा है कि महर्षि वेदव्यास ने महाराजा युधिष्ठिर के अनुरोध पर रामायण की यह टीका लिखी थी ।

वाल्मीकीय रामायण के युद्धकाण्ड के ८१वें अध्याय का २८वां श्लोक महाभारत के द्रोण पर्व के १४३वें अध्याय के ६७वें और ६८वें श्लोकों में उद्धृत है । रामायण और महाभारत के ये श्लोक इस प्रकार हैं–

न हन्तव्याः स्त्रियश्चेति यद् ब्रवीषि प्लवङ्गम ।
पीडाकरममित्राणां यच्च कर्त्तव्यमेव तत् ।।

(युद्ध ८१।२८)

अरे वानर ! तुम कहते हो कि स्त्रियों को नहीं मारना चाहिए, किन्तु जिस काम से शत्रुओं को कष्ट हो वह सब करना ही चाहिए।

(इन्द्रजित्)

अपि चायं पुरा गीतः श्लोको वाल्मीकिना भुवि ।
न हन्तव्याः स्त्रिय इति यद् ब्रवीषि प्लवङ्गम ।।६७।।
सर्वकालं मनुष्येण व्यवसायवता सदा ।
पीडाकरममित्राणां यत् स्यात् कर्त्तव्यमेव तत् ।।६८।।

वाल्मीकि ने बहुत पहिले ही इस पृथिवी पर यह श्लोक गाया था कि–

अरे वानर ! तुम कहते हो स्त्रियों को नहीं मारना चाहिए किन्तु मैं तो कहता हूं कि उद्योगशील मनुष्य को सदैव ऐसे काम करने चाहिएं जिनसे शत्रु को कष्ट हो । **(सात्यकि)**

इसके अतिरिक्त कई पुराणों और अनेक ग्रन्थों में भी वाल्मीकि और उनके काव्य रामायण का उल्लेख है । कालिदास, भवभूति, शार्ङ्गधर, भास, शंकराचार्य, रामानुज, राजा भोज आदि संस्कृत कवियों से लेकर गोस्वामी तुलसीदास तथा अनेक भारतीय साहित्यकारों ने अपनी काव्यकृतियों का आधार रामकथा को ही बनाया है ।

किंवदन्ती है कि महर्षि वाल्मीकि नीची जाति के शिकारी थे । किन्तु वाल्मीकि ने अपने को प्रचेता का पुत्र कहा है । स्कन्दपुराण में वाल्मीकि को पूर्वजन्म में व्याध कहा गया है ।

रामायण पर टीकाएं–

वाल्मीकीय रामायण पर अनेक प्राचीन टीकाएं हैं । इनमें नागोजी भट्ट, गोविन्दराज, शिवसहाय, माहेश्वरतीर्थ, कन्दाल रामानुज, वरदराज, त्र्यम्बकराज मखानी और रामानन्द तीर्थ आदि संस्कृत टीकाकारों के नाम उल्लेखनीय हैं । अमृतकतक, रामायणसारदीपिका, गुरुबाला चित्तरंजिनी, विद्वन्मनोरंजिनी आदि रामायण की ऐसी टीकाएं हैं जिनके लेखकों के नाम मालूम नहीं हैं । इनके अतिरिक्त रामायण पर संस्कृत की अनेक अज्ञात टीकाएं भी हैं । संस्कृत टीकाओं के अतिरिक्त हिन्दी, बंगला, मराठी, गुजराती आदि विभिन्न भारतीय भाषाओं में तथा फ्रेंच, अंग्रेजी आदि विदेशी भाषाओं में भी रामायण पर टीकाएं लिखी गई हैं । देशी-विदेशी भाषाओं की टीकाओं के अतिरिक्त द्वैत, अद्वैत, शुद्धाद्वैत, विशिष्टाद्वैत और आर्यसमाज आदि मतों के अनुसार की गई रामायण की टीकाओं का कोई अन्त नहीं है ।

रामायण के काव्य-गुण तथा विशेषताएं

यह देखकर आश्चर्य होता है कि आदिकवि महर्षि वाल्मीकि ने किसी काव्य या ग्रन्थ का अध्ययन किये बिना ही सर्वोत्तम काव्य की रचना की । कुछ विद्वानों के अनुसार दण्डी आदि काव्य मर्मज्ञों ने रामायण के लक्षणों के आधार पर ही काव्यों की परिभाषा की है । त्र्यम्बकराज मखानी ने सुन्दर काण्ड के प्रायः सभी श्लोकों को विभिन्न अलंकारों और रसों से युक्त मानकर 'सुन्दरकाण्ड' नाम की सार्थकता प्रतिपादित की है । वाल्मीकि के प्रकृति-वर्णन और संवाद बहुत सुन्दर और सटीक हैं । वाल्मीकि ने आयुर्वेद, ज्योतिष, तन्त्र, राजनीति, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र और समुचित आचार-व्यवहार आदि अनेक विषयों से सम्बद्ध महत्त्वपूर्ण जानकारी स्थान-स्थान पर दी है ।

कहते हैं कि आदि कवि की इस अद्‌भुत कविता तथा इसमें प्रतिष्ठित गुणों का प्रधान कारण वाल्मीकि की तपस्या है । रामायण का आरम्भ ही तप से होता है–

ओ३म् तपः स्वाध्यायनिरतं तपस्वी वाग्विदांवरम् ।
नारदं परिपप्रच्छ वाल्मीकिर्मुनिपुङ्गवम् ॥

(बालकाण्ड १।१)

तपस्वी वाल्मीकि ने तप और स्वाध्याय करने वाले श्रेष्ठ मुनि नारद से पूछा ।

महर्षि वाल्मीकि ने सम्पूर्ण रामायण में यही उपदेश दिया है कि मनुष्य को पवित्र जीवन व्यतीत कर तपस्या करते हुए ईश्वर की आराधना करनी चाहिए ।

आधुनिक इतिहासकार रामायण और महाभारत आदि काव्यों को ऐतिहासिक काव्य नहीं मानते, किन्तु भारत की प्राचीन परम्परा में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का उपदेश देने के लिए पूर्वकाल में घटी घटनाओं का वर्णन इतिहास माना जाता है–

धर्मार्थकाममोक्षाणामुपदेशसमन्वितम् ।
पूर्ववृत्तं कथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते ॥

(विष्णुधर्मपुराण ३।१५।१)

वाल्मीकि ने जिन भौगोलिक स्थानों का उल्लेख किया है उनके बारे में भारतीय और विदेशी विद्वानों ने पर्याप्त अनुसन्धान किया है । इसके परिणामस्वरूप रामायण में वर्णित अनेक स्थानों की इन दिनों प्रचलित उनके नामों से संगति भी बैठ गई है ।

रामायण की शाश्वती लोकप्रियता

संसार में वाल्मीकि रामायण काव्य सबसे अधिक लोकप्रिय, दिव्य तथा कल्याणकारी है । हरिवंशपुराण में यदुवशियों द्वारा वाल्मीकि रामायण के नाटक खेलने का उल्लेख है–

रामायणं महाकाव्यमुद्दिश्य नाटकं कृतम् ।

(विष्णुपर्व ९३।६-३३)

इस प्रकार स्पष्ट है कि श्रीकृष्ण के काल से ही रामलीला खेली जाने लगी थी । रामलीला की यह परम्परा आज भी चली आ रही है ।

भारत में ही नहीं अपितु दक्षिण पूर्व एशिया के देशों मलयेशिया, कम्बोदिया, थाईलैण्ड (स्याम), लाओस, वियतनाम और इन्दोनेसिया आदि में कुछ परिवर्त्तनों के साथ आज भी रामलीला खेली जाती है । इन सभी देशों में रामकथा बहुत लोकप्रिय है ।

संस्कृत में हनुमन्नाटक, प्रसन्नराघव नाटक, अनर्घराघव नाटक, महानाटक, बालरामायण नाटक आदि रामकथा से सम्बद्ध अनेक नाट्य ग्रन्थों की रचना की गई । इन सभी ग्रन्थों का आधार वाल्मीकीय रामायण ही है ।

भारत में वाल्मीकीय रामायण के चार पाठ प्रचलित हैं– **१. पश्चिमोत्तर शाखा, २. बंगशाखीय संस्करण, ३. दाक्षिणात्य संस्करण, ४. उत्तर भारत संस्करण ।**

दाक्षिणात्य तथा उत्तर भारत के संस्करण एक जैसे हैं । पश्चिम और पूर्व के संस्करणों में अध्यायों का अन्तर है । रामायण का दाक्षिणात्य संस्करण ही सर्वत्र प्रचलित है ।

प्रस्तुत सुभाषित संकलन गीता प्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित वाल्मीकीय रामायण के ११वें-१२वें संस्करणों पर आधारित है ।

गीता प्रेस संस्कृत के सत्साहित्य के प्रकाशन में अद्वितीय भूमिका निभा रहा है । एक प्रकार से यह कार्य प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक परम्परा का ही निर्वाह है क्योंकि भारत के मनीषी और महर्षि, लोकहितकारी शाश्वत-साहित्य की रचना देववाणी संस्कृत में करते आ रहे हैं । सर्वजन ग्राह्य और मानव-मात्र के लिए कल्याणकारी यह विपुल साहित्य प्राय: सर्वथा मौलिक रूप में आज भी उपलब्ध है । न केवल भारतवासी अपितु समस्त संसार के मंगलाभिलाषी और विवेक सम्पन्न नर-नारी इस साहित्य से अपना जीवन संवार रहे हैं । किन्तु जीवन की वर्त्तमान परिस्थितियों में बहुत कम लोगों को इस साहित्य के अनुशीलन के लिए समय और सुविधा मिल पाती है । भारत के इस सर्वतोभद्र साहित्य से जनता परिचित और लाभान्वित हो इसी उद्देश्य से वाल्मीकि रामायण के सुभाषितों का संकलन किया गया है ।

ज्ञानवृद्ध और अनुभववृद्ध विद्वानों सर्वश्री पद्मश्री महामहोपाध्याय डा० सत्यव्रत जी शास्त्री और विद्यामार्त्तण्ड डा० कृष्णकुमार जी ने इस संकलन के सम्बन्ध में अपने विचार लिखने की कृपा की। मैं इन दोनों ही विद्वत् महानुभावों का सदैव कृतज्ञ बना रहूंगा । परमपिता परमात्मा से मेरी प्रार्थना है कि समाज का पथ-प्रदर्शन करते रहने के लिए प्रभु इन्हें दीर्घायुष्य और उत्तम स्वास्थ्य प्रदान करे ।

किसी रचना के प्रचार और प्रसार में प्रकाशक का योगदान अपरिहार्य होता है । विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द लगभग एक शताब्दि से सत्साहित्य का प्रकाशन करते आ रहे हैं । इस प्रकाशन संस्था के प्रबुद्ध और कर्मठ संचालक श्री अजयकुमार जी ने रामायण सुभाषित के प्रकाशन का दायित्व लेकर समाज के प्रति मुझे अपना कर्त्तव्य पूरा करने में सहायता दी । इसके लिए मैं उन्हें हार्दिक धन्यवाद देता हूं ।

वैशाखी नववर्ष, चैत्र प्रतिपदा
विक्रम संवत् २०५९ **सुभाष विद्यालंकार**

अनुशंसा

साहित्य की अनेक विधाओं के माध्यम से विद्वान् साहित्यकार और कवि अति प्राचीन काल से ही सूक्तियों द्वारा विविध प्रकार के उपदेशों को प्रस्तुत करते रहे हैं । इन सूक्तियों से सहृदय पाठकों का मनोरञ्जन होने के साथ ही उपदेशों की अभिव्यञ्जना भी होती रही है । इन उपदेशों को सूक्ति अथवा सुभाषित कहा जाता है ।

किसी उपदेश को, जो हितकारी और विस्तृत हो, सारगर्भित रूप में संक्षेप से कहना ही सूक्ति है । यह परम्परा अति प्राचीन है और उपयोगी है । सभी साहित्यकारों ने इस परम्परा को अपना कर अपनी कृतियों में सूक्तियों को स्थान दिया है । आचार्य मम्मट द्वारा कहा गया– 'उपदेशयुजे' काव्य-प्रयोजन 'कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे' इन सूक्तियों पर सर्वथा चरितार्थ होता है । यह तो "गुडमिश्रितकटुकौषधकल्प" है। सूक्तियों के द्वारा साहित्यकार कठोर से कठोर और अप्रिय बात को सरल और सरस ढंग से कह देते थे । समालोचकों ने काव्यों में सन्निहित सूक्तियों को परम आभूषण माना है । सूक्तियों द्वारा विभूषित काव्य अत्यधिक आकर्षण और हर्ष प्रदान करता है । काव्य रसों से सम्पृक्त होने के कारण उपदेश सरलता से ग्राह्य हो जाते हैं । किसी कवि ने ठीक ही कहा है–

धन्याः शुचीनि सुरभीणि गुणोम्भितानि,
वाग्वीरुधः स्ववदनोपवनोद्‌गतायाः ।
उच्चित्य सूक्तिकुसुमानि सतां विविक्त-
वर्णानि कर्णपुलिनेष्ववतंसयन्ति ॥

अर्थात् अपने मुख के उद्यान में उत्पन्न वाणी की लताओं पर लगे हुए सुगन्धित, गुणों से परिपूर्ण, अनेक रंगों के (अक्षरों) के मनोहारी और निश्छल कुसुम (सुभाषित) सज्जनों के कानों के आभूषण बन

जाते हैं ।

हजारों वर्ष पूर्व महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित 'रामायण' महाकाव्य न केवल भारतीयों के लिए अपितु समस्त विश्व के लिए समादरणीय और उपयोगी है । इस काव्य के सभी पात्र पूजनीय और महान् गुणों से सम्भृत हैं । महर्षि ने इन पात्रों के मुख से सूक्तियों का उच्चारण कराया है, जो शिक्षाप्रद तथा उचित व्यवहार के लिए अति उपयोगी हैं । ये सूक्तियां सहृदय-सामाजिकों के हृदयों को तत्क्षण प्रभावित करती हैं और उन पर अमिट छाप छोड़ जाती हैं । 'रामायण' में इन सूक्तियों की भरमार है ।

श्री सुभाष विद्यालंकार ने 'रामायण' की प्रमुख सूक्तियों का संकलन करके इनका विषयवार वर्गीकरण किया है तथा उनकी हिन्दी भाषा में विशद व्याख्या की है । उनका यह प्रयास उपादेय, स्तुत्य और सर्वजनग्राह्य है ।

कृष्णकुमार

हरिद्वार २२।७।२००१ सेवानिवृत्त, संस्कृत विभागाध्यक्ष

गढ़वाल विश्वविद्यालय

अ

अपथ्य भोजन

१. **अपथ्यैः सह सम्भुक्ते व्याधिरन्नरसे यथा ॥** अयो० ६४।५९

शरीर को नुकसान पहुंचाने वाली वस्तुओं से युक्त अन्न खाने पर मनुष्य बीमार हो जाता है ।

२. **अपथ्यव्यञ्जनोपेतं भुक्तमन्नमिवातुरम् ॥** अयो० १२।७१

हानिकर वस्तुओं से युक्त भोजन रोगी को नुकसान पहुंचाता है।

पथ्य भोजन

स भारः सौम्य भर्तव्यो यो नरं नावसादयेत् ।
तदन्नमपि भोक्तव्यं जीर्यते यदनामयम् ॥

अरण्य० ५०।१८

सौम्य ! पुरुष को उतना ही भार उठाना चाहिए जितने से उसे कष्ट न हो । हमें वही अन्न खाना चाहिए जो शरीर में भलीभांति पच जाये और रोग उत्पन्न न करे ।

अपयश

१. **अकीर्तिर्यस्य गीयेत लोके भूतस्य कस्यचित् ।**
पतत्येवाधमाँल्लोकान् यावच्छब्दः प्रकीर्त्यते ॥ उत्तर०४५।१२

जिस मनुष्य का अपयश संसार में होने लगता है वह तब तक नीच लोकों में पड़ा रहता है जब तक लोगों की जबान पर उसकी चर्चा रहती है ।

२. **अकीर्तिर्निन्द्यते देवैः कीर्तिर्लोकेषु पूज्यते ।**
कीर्त्यर्थं तु समारम्भः सर्वेषां सुमहात्मनाम् ॥ उत्तर० ४५।१३

श्रेष्ठ पुरुष अपयश को बुरा बताते हैं । संसार में यशस्वी पुरुष का सम्मान किया जाता है । सज्जन महापुरुष यश के लिए कार्य करते हैं ।

अर्थ

१. **अर्थेभ्योऽथ प्रवृद्धेभ्यः संवृत्तेभ्यस्ततस्ततः।**
क्रियाः सर्वाः प्रवर्तन्ते पर्वतेभ्य इवापगाः।। युद्ध० ८३।३२

जैसे पर्वतों के अनेक स्थानों से नदियां निकलती हैं उसी तरह जगह-जगह से धन एकत्र कर और इसे बढ़ाकर संसार के सारे काम किये जाते हैं ।

२. **अर्थेन हि विमुक्तस्य पुरुषस्याल्पचेतसः ।**
विच्छिद्यन्ते क्रियाः सर्वा ग्रीष्मे कुसरितो यथा ।। युद्ध० ८३।३३

जो मूर्ख पुरुष निर्धन हो जाता है उसके सारे काम उसी तरह रुक जाते हैं जैसे गर्मियों में छोटी नदियां सूख जाती हैं ।

३. **सोऽयमर्थं परित्यज्य सुखकामः सुखैधितः ।**
पापमाचरते कर्तुं तदा दोषः प्रवर्तते ।। युद्ध० ८३।३४

सुख में पला हुआ पुरुष निर्धन हो जाने पर सुख से रहने के लिए जब गलत उपायों से पैसा कमाना चाहता है तब वह बुरे कामों में फंस जाता है ।

४. **यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः ।**
यस्यार्थाः स पुमाँल्लोके यस्यार्थाः स च पण्डितः ।। युद्ध०८३।३५

जिस व्यक्ति के पास धन सम्पत्ति होती है उसी के सब मित्र और भाई-बन्धु बनना चाहते हैं । धनी व्यक्ति ही श्रेष्ठ और विद्वान् माना जाता है ।

५. **यस्यार्थाः स च विक्रान्तो यस्यार्थाः स च बुद्धिमान् ।**
यस्यार्थाः स महाभागो यस्यार्थाः स गुणाधिकः ।।
युद्ध० ८३।३६

पैसे वाले को भी दुनिया शूरवीर, बुद्धिमान्, गुणवान् और भाग्यवान् मानती है ।

६. **यस्यार्था धर्मकामार्थास्तस्य सर्वं प्रदक्षिणम् ।**
अधनेनार्थकामेन नार्थः शक्यो विचिन्वता ॥ युद्ध० ८३।३८

जिसके पास पैसा होता है उसके सारे धार्मिक और मनचाहे सारे काम पूरे हो जाते हैं । सभी लोग और परिस्थितियां पैसे वाले के अनुकूल बन जाती हैं । किन्तु निर्धन पुरुष को पैसा कमाने के लिए बहुत परिश्रम करने पर ही सफलता मिल पाती है ।

७. **हर्षः कामश्च दर्पश्च धर्मः क्रोधः शमो दमः ।**
अर्थादेतानि सर्वाणि प्रवर्तन्ते नराधिप ॥ युद्ध० ८३।३९

हे राजन् ! पैसे से ही प्रसन्नता, इच्छाओं की पूर्ति, धर्म, क्रोध, शम और दम आदि सभी बातें पूरी होती हैं ।

८. **येषां नश्यत्ययं लोकश्चरतां धर्मचारिणाम् ॥** युद्ध० ८३।४०

धर्माचरण करने वालों के लिए पैसे के अभाव में यह दुनिया मुंह मोड़ लेती है ।

अवसर—काल

१. **अत्येति रजनी या तु सा न प्रतिनिवर्तते ।**
यात्येव यमुना पूर्णं समुद्रमुदकार्णवम् ॥ अयोध्या १०५।१९

जैसे बीती हुई रात फिर लौटकर नहीं आती उसी प्रकार जल से भरी यमुना भी समुद्र में मिलकर फिर नहीं लौटती ।

२. **न कालादुत्तरं किञ्चित् कर्म शक्यमुपासितुम् ॥** किष्०२५।३

अवसर बीत जाने पर कोई भी काम नहीं किया जा सकता।

३. **न कर्ता कस्यचित् कश्चिन्नियोगे नापि चेश्वरः ।**
स्वभावे वर्तते लोकस्तस्य कालः परायणम् ॥ किष्० २५।५

कोई भी मनुष्य स्वतन्त्रता से कोई काम नहीं कर सकता और न

कोई और व्यक्ति किसी को किसी काम में लगा सकता है । सारे संसार के प्राणी अपने अपने स्वभाव के अनुसार आचरण करते हैं और उनके इस स्वभाव का कारण या आधार काल होता है ।

४. **न कालः कालमत्येति न कालः परिहीयते ।**
स्वभावं च समासाद्य न कश्चिदतिवर्तते ॥ किष्० २५।६

काल भी अपनी व्यवस्था का उल्लंघन नहीं कर सकता । काल कभी नष्ट भी नहीं होता । अपने प्रारब्ध को पाकर कोई भी प्राणी काल का अतिक्रमण नहीं कर सकता ।

५. **न कालस्यास्ति बन्धुत्वं न हेतुर्न पराक्रमः ।**
न मित्रज्ञातिसम्बन्धः कारणं नात्मनो वशः ॥ किष्० २५।७

काल का किसी के साथ भाई बिरादरी का, मित्रता का या जाति आदि का कोई सम्बन्ध नहीं होता । उसे कोई वश में नहीं कर सकता। काल पर किसी का भी पराक्रम नहीं चल सकता ।

६. **किं तु कालपरीणामो द्रष्टव्यः साधु पश्यता ।**
धर्मश्चार्थश्च कामश्च कालक्रमसमाहिताः ॥ किष्०२५।८

विवेकशील मनुष्य को संसार में सब कुछ काल का परिणाम ही समझना चाहिए । हमें धर्म, अर्थ और काम भी काल के अनुसार ही मिलते हैं ।

७. **चोदितस्य हि कार्यस्य भवेत् कालव्यतिक्रमः॥** किष्०२९।१६

बहुत समय बीत जाने पर ही कोई कार्य पूरा न होने की याद दिलाई जाती है ।

८. **कालो हि दुरतिक्रमः ॥** सुन्दर १६।३

काल का उल्लंघन कर पाना बहुत कठिन है ।

अहिंसा

१. **अपराधं विना हन्तुं लोको वीर न मंस्यते ॥** अरण्य ९।२५

निरपराध प्राणी को मारना लोगों को अच्छा नहीं लगता ।

२. **कदर्यकलुषा बुद्धिर्जायते शस्त्रसेवनात् ॥** अरण्य ९।२८

हथियारों का प्रयोग करने से बुद्धि पापपूर्ण हो जाती है ।

अराजकता

१. **नाराजके जनपदे विद्युन्माली महास्वनः ।**
अभिवर्षति पर्जन्यो महीं दिव्येन वारिणा ॥ अयोध्या ६७।९

जिस जनपद में कोई राजा नहीं होता वहां बिजली की मालाओं से सुशोभित घोर गर्जना करने वाले बादल अपने दिव्य जल से पृथ्वी को नहीं सींचते ।

२. **नाराजके जनपदे बीजमुष्टिः प्रकीर्यते ।**
नाराजके पितुः पुत्रो भार्या वा वर्तते वशे ॥ अयोध्या ६७।१०

राजा से रहित देश में लोग खेतों में बीज नहीं बोते । ऐसे राज्य में पुत्र, पिता के और स्त्री, पति के वश में नहीं रहती ।

३. **अराजके धनं नास्ति भार्याप्यराजके ।**
इदमत्याहितं चान्यत् कुतः सत्यमराजके ॥ अयोध्या ६७।११

राज्यव्यवस्था से रहित देश में न तो अपने धन पर अधिकार रह पाता है और न ही अपनी पत्नी पर । ऐसे देश में सदा भय छाया रहता है वहां कोई अच्छी स्थिति कैसे रह सकती है ।

४. **नाराजके जनपदे प्रहृष्टनटनर्तकाः ।**
उत्सवाश्च समाजाश्च वर्धन्ते राष्ट्रवर्धनाः ॥ अयोध्या ६७।१५

अराजकतापूर्ण राष्ट्र में कलाओं, ललित कलाओं का और देश की उन्नति करने वाली विचारगोष्ठियौं तथा सांस्कृतिक समारोहों का आयोजन नहीं हो पाता ।

५. **नाराजके जनपदे सिद्धार्था व्यवहारिणः ॥** अयोध्या ६७।१६

अराजकतापूर्ण देश में वादी-प्रतिवादी के बीच मुकदमों का निपटारा

नहीं हो पाता, प्रजा को न्याय नहीं मिलता और न ही व्यापारियों को व्यापार से लाभ होता है ।

६. **नाराजके जनपदे तूद्यानानि समागताः ।**
सायाह्ने क्रीडितुं यान्ति कुमार्यो हेमभूषिताः ॥ अयो० ६७।१७

अराजकतापूर्ण देश में सुवर्णालंकारों से भूषित कुमारियां शाम को बागों में खेलने नहीं जातीं ।

७. **नाराजके जनपदे धनवन्तः सुरक्षिताः ।**
शेरते विवृतद्वाराः कृषिगोरक्षजीविनः ॥ अयोध्या ६७।१८

अराजकतापूर्ण देश में धनी लोग सुरक्षित नहीं रह पाते और खेती तथा गोपालन करने वाले भी घर के दरवाजे खुले छोड़कर चैन की नींद नहीं सो पाते ।

८. **नाराजके जनपदे वाहनैः शीघ्रवाहिभिः ।**
नरा निर्यान्त्यरण्यानि नारिभिः सहकामिनः ॥ अयोध्या ६७।१९

अराजकतापूर्ण देश में कामी पुरुष स्त्रियों के साथ तेज चाल की गाड़ियों में बैठकर वन विहार के लिए नहीं निकलते ।

९. **नाराजके जनपदे वणिजो दूरगामिनः ।**
गच्छन्ति क्षेममध्वानं बहुपण्यसमाचिताः ॥ अयोध्या ६७।२२

अराजकतापूर्ण देश में व्यापारी अनेक वस्तुएं लेकर बिना किसी भय के दूर दूर तक जाकर व्यापार नहीं कर सकते ।

१०. **नाराजके जनपदे चरत्येकचरो वशी ।**
भावयन्नात्माऽऽत्मानं यत्र सायं गृहो मुनिः ॥ अयोध्या ६७।२३

अराजकतापूर्ण देश में अकेला घूमने वाला, परमात्मा के ध्यान में मस्त, ऐसा जितेन्द्रिय मुनि नहीं घूमता जो जहां शाम हो जाय वहीं डेरा डाल देता है ।

११. **नाराजके जनपदे योगक्षेमः प्रवर्तते ।**
न चाप्यराजके सेना शत्रून् विषहते युधि ॥ अयोध्या ६७।२४

अराजकतापूर्ण देश में लोगों को अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति (योग) और प्राप्त वस्तु की रक्षा (क्षेम) नहीं हो पाती और सेना; शत्रु का सामना नहीं कर पाती ।

१२. नाराजके जनपदे हृष्टैः परमवाजिभिः ।
नराः संयान्ति सहसा रथैश्च प्रतिमण्डिताः ॥ अयोध्या ६७।२५

अराजकतापूर्ण देश में लोग सजधज कर हृष्ट पुष्ट घोड़ों से जुते रथों में बैठकर निर्भय हो यात्रा नहीं कर पाते ।

१३. नाराजके जनपदे नराः शास्त्रविशारदाः ।
संवदन्तोपतिष्ठन्ते वनेषूपवनेषु वा ॥ अयोध्या ६७।२६

अराजकतापूर्ण देश में विद्वान् व्यक्ति आपस में शास्त्र चर्चा करते हुए वनों में या उपवनों में नहीं रह पाते ।

१४. यथा ह्यनुदका नद्यो यथा वाप्यतृणं वनम् ।
अगोपाला यथा गावस्तथा राष्ट्रमराजकम् ॥ अयोध्या ६७।२९

राजा के सुशासन से रहित देश की स्थिति सूखी नदियों, सूखे वनों और ग्वालों की देखभाल से रहित गौओं जैसी हो जाती है ।

१५. ध्वजो रथस्य प्रज्ञानं धूमो ज्ञानं विभावसोः ।
तेषां यो नो ध्वजो राजा स देवत्वमितो गतः ॥ अयोध्या ६७।३०

लहराते हुए झण्डे को देखकर जैसे रथ आने का पता चल जाता है और धुएं को देखकर अग्नि का, उसी प्रकार प्रजा का मूर्धन्य राजा होता है, किन्तु आज हमारे राजा का देहान्त हो गया है ।

१६. नाराजके जनपदे स्वकं भवति कस्यचित् ।
मत्स्या इव जना नित्यं भक्षयन्ति परस्परम् ॥ अयोध्या ६७।३१

देश में राजा के न होने पर किसी भी मनुष्य की कोई भी वस्तु अपनी नहीं रहती । छोटी मछली को बड़ी मछली की तरह लोग एक दूसरे को लूटते रहते हैं ।

१७. ये हि सम्भिन्नमर्यादा नास्तिकाश्छिन्नसंशयाः ।
तेऽपि भावाय कल्पन्ते राजदण्डनिपीडिताः ॥ अयोध्या ६७।३२

कानून का पालन न करने वाले, नास्तिक और निरंकुश लोग राजदण्ड के भय से चुप बैठे रहते हैं किन्तु राजा के न रहने पर उच्छृंखल हो जाते हैं ।

उत्साह

१. उत्साहवन्तो हि नरा न लोके सीदन्ति कर्मस्वतिदुष्करेषु ।
अरण्य ६३।१९

उत्साह से भरे मनुष्य अत्यन्त कठिन काम आ पड़ने पर भी संसार में कभी दुःखी नहीं होते हैं ।

२. अर्थो हि नष्टकार्यार्थैरयत्नेनाधिगम्यते ॥ किष् १।१२०

जिन लोगों का काम बिगड़ जाता है और धन नष्ट हो जाता है उन्हें उत्साहपूर्वक प्रयत्न करने के बिना अपना अभीष्ट नहीं मिल पाता।

३. उत्साहो बलवानार्य नास्त्युत्साहात्परं बलम् ।
सोत्साहस्य हि लोकेषु न किञ्चिदपि दुर्लभम् ॥ किष् १।१२१

मनुष्य का उत्साह ही उसका बल होता है । उत्साह या हिम्मत से बढ़कर और कोई शक्ति इस संसार में नहीं है । उत्साह वाले मनुष्य के लिए संसार में कोई भी वस्तु अप्राप्य नहीं रह जाती ।

४. उत्साहवन्तः पुरुषा नावसीदन्ति कर्मसु ॥ किष् १।१२२

उत्साहशील पुरुष कोई भी काम आ जाने पर हिम्मत नहीं हारते।

५. अनिर्वेदं च दाक्ष्यं च मनसश्चापराजयम् ।
कार्यसिद्धिकराण्याहुस्तस्मादेतद् ब्रवाम्यहम् ॥ किष् ४९।६

उत्साह, कौशल और मन में हिम्मत न हारना ये तीनों गुण किसी

भी काम में सफलता प्राप्त करा देते हैं ।

६. **अवश्यं कुर्वतां तस्य दृश्यते कर्मणः फलम् ।**
परं निर्वेदमागम्य न हि नोन्मीलनं क्षमम् ॥ किष् ४९।८

किसी काम में लगे रहने पर उस काम का फल अवश्य मिलता है, इसलिए हिम्मत हार कर कोई काम नहीं छोड़ देना चाहिए ।

७. **न विषादे मनः कार्यं विषादो दोषवत्तरः ।**
विषादो हन्ति पुरुषं बालं क्रुद्ध इवोरगः ॥ किष्६४।९

हमें अपने मन में हिम्मत नहीं हारनी चाहिए क्योंकि उत्साहहीनता से अधिक बड़ी कोई बुराई नहीं है । उत्साहहीन पुरुष उसी भांति नष्ट हो जाता है जैसे क्रुद्ध सर्प से डसा हुआ व्यक्ति ।

८. **यो विषादं प्रसहते विक्रमे समुपस्थिते ।**
तेजसा तस्य हीनस्य पुरुषार्थो न सिद्ध्यति ॥ किष् ६४।१०

पराक्रम करने का अवसर आने पर जो मनुष्य उत्साहहीन हो जाता है उस तेजरहित पुरुष का कोई काम नहीं बनता ।

९. **अनिर्वेदः श्रियो मूलमनिर्वेदः परं सुखम् ॥** सुन्दर १२।१०

उत्साहशील पुरुष को ही लक्ष्मी मिलती है । उत्साह से ही जीवन में सुख मिलता है ।

१०. **अनिर्वेदो हि सततं सर्वार्थेषु प्रवर्तकः ॥** सुन्दर १२।११

उत्साह के कारण ही मनुष्य सब तरह के काम करते हैं ।

११. **निरुत्साहस्य दीनस्य शोकपर्याकुलात्मनः ।**
सर्वार्था व्यवसीदन्ति व्यसनं चाधिगच्छति ॥ युद्ध २।६

उत्साहरहित, निराश और शोक से व्याकुल मनुष्य के सारे काम बिगड़ जाते हैं और वह मुसीबतों में पड़ जाता है ।

१२. **यत् तु कार्यं मनुष्येण शौटीर्यमवलम्बताम् ।**
तदलङ्करणायैव कर्तुर्भवति सत्वरम् ॥ युद्ध २।१४

मनुष्य को शूरता का सहारा ही लेना चाहिए क्योंकि इसी से उसे सफलता और सत्कार प्राप्त होता है ।

क

कर्मफल

१. **अवश्यं लभते कर्ता फलं पापस्य कर्मणः ॥** युद्ध १११।२५

पाप कर्म करने वाले को उसका फल अवश्य मिलता है ।

२. **नचिरात् प्राप्यते लोके पापानां कर्मणां फलम् ।**
सविषाणामिवान्नानां भुक्तानां क्षणदाचर ॥ अरण्य २९।९

राक्षस ! जैसे विष मिला भोजन खाने का प्रभाव तुरन्त पता चल जाता है उसी तरह पापी को अपने कर्मों का फल जल्दी ही मिल जाता है ।

३. **अकुर्वन्तोऽपि पापानि शुचयः पापसंश्रयात् ।**
परपापैर्विनश्यन्ति मत्स्या नागह्रदे यथा ॥ अरण्य ३८।२६

शुद्ध आचार-व्यवहार वाले मनुष्य यदि पापियों के सम्पर्क में आ जाते हैं तो वे उनके बुरे कार्यों से स्वयं कोई अनुचित कार्य न करने पर भी उसी तरह नष्ट हो जाते हैं जैसे सांप वाले तालाब की मछलियां नष्ट हो जाती हैं ।

४. **बहवः साधवो लोके युक्तधर्ममनुष्ठिताः ।**
परेषामपराधेन विनष्टाः सपरिच्छदाः ॥ अरण्य ४१।१३

उचित धर्म का पालन करने वाले अनेक सज्जन दूसरों के अपराधों के कारण परिवार सहित नष्ट हो जाते हैं ।

५. **न तु सद्योऽविनीतस्य दृश्यते कर्मणः फलम् ।**
कालोप्यङ्गीभवत्यत्र सस्यानामिव पक्तये ॥ अरण्य ४९।२७

उद्दण्ड व्यक्ति के अनुचित कार्य का फल जल्दी नहीं दिखाई देता,

इसमें कुछ समय लगता है जैसे अन्न के पकने में ।

६. **सुमहान्त्यपि भूतानि देवाश्च पुरुषर्षभ ।**
न दैवस्य प्रमुञ्चन्ति सर्वभूतानि देहिनः ॥ अरण्य ६६।१२

हे महापुरुष ! बड़े बड़े भूत और देवता भी कर्मफल से छुटकारा नहीं पा सकते । इसी तरह शरीरधारी प्राणियों को भी कर्मफल भुगतने पड़ते हैं ।

७. **यदाचरति कल्याणि शुभं वा यदि वाशुभम् ।**
तदेव लभते भद्रे कर्ता कर्मजमात्मनः ॥ अयोध्या ६३।६

हे कल्याणमयी ! मनुष्य जो भी अच्छे या बुरे कर्म करता है उसे उन कर्मों का फल मिलता है ।

८. **कश्चिदाम्रवणं छित्त्वा पलाशांश्च निषिञ्चति ।**
पुष्पं दृष्ट्वा फले गृध्नुः स शोचति फलागमे ॥ अयोध्या ६३।८

जो व्यक्ति ढाक का सुन्दर फूल देखकर और यह सोचकर कि ऐसे सुन्दर फूल का फल भी बहुत अच्छा होगा आम का बाग काट कर ढाक बोता है उसे ढाक के फल देखकर पछताना पड़ता है ।

९. **सत्यं च धर्मं च पराक्रमं च, भूतानुकम्पां प्रियवादितां च।**
द्विजातिदेवातिथिपूजनं च, पन्थानमाहुस्त्रिदिवस्य सन्तः॥
अयोध्या १०९।३१

सत्य और धर्म का पालन, वीरता, प्राणियों पर दया, मधुर व्यवहार, देवताओं, ब्राह्मणों और अतिथियों के सत्कार को सज्जन स्वर्गप्राप्ति का मार्ग बताते हैं ।

१०. **गुणदोषकृतं जन्तुः स्वकर्मफलहेतुकम् ।**
अव्यग्रस्तदवाप्नोति सर्वं प्रेत्य शुभाशुभम् ॥ किष्किन्धा २१।२

जीव जैसे भी अच्छे या बुरे कर्म करता है उनका फल परलोक में भोगता है ।

११. **शुभकृच्छुभमाप्नोति पापकृत् पापमश्नुते ॥** युद्ध १११।२६

अच्छे कर्म करने वाले को सुखकर फल मिलता है पापी को दुख भोगना पड़ता है ।

१२. यादृशं कुरुते कर्म तादृशं फलमश्नुते ॥ उत्तर १५।२५

जो मनुष्य जैसा कर्म करता है उसे उस कार्य का वैसा ही फल मिलता है ।

१३. ऋद्धिं रूपं बलं पुत्रान् वित्तं शूरत्वमेव च ।
प्राप्नुवन्ति नरा लोके निर्जितं पुण्यकर्मभिः ॥ उत्तर १५।२६

संसार में लोगों को अपने पुण्य कर्मों के कारण ही समृद्धि, सुन्दरता, बल, पुत्र, धन और शूरवीरता प्राप्त होती है ।

१४. कृतान्तः कुशलः पुत्र येनास्मि व्यसनीकृतः ॥ उत्तर ५४।१६

हे पुत्र ! मेरे किये हुए कर्मों ने ही मुझे आपत्ति में फंसाया है।

१५. प्राप्तव्यान्येव प्राप्नोति गन्तव्यानेव गच्छति ॥ उत्तर ५४।१६
लब्धव्यान्येव लभते दुःखानि च सुखानि च ।
पूर्वे जात्यन्तरे वत्स मा विषादं कुरुष्व ह ॥ उत्तर ५४।१७

वत्स ! मनुष्य पूर्वजन्म में किये कर्मों के अनुसार सुख-दुःख, पदार्थों और प्राप्त होने वाली वस्तुओं तथा विभिन्न स्थानों पर आने जाने के अवसर प्राप्त करता है ।

कामवासना

१. परदाराभिमर्शात् तु नान्यत् पापतरं महत् ॥ अरण्य ३८।३०

परायी स्त्री के साथ बलात्कार से बढ़कर कोई पाप नहीं है ।

२. कामस्वभावो यः सोऽसौ न शक्यस्तं प्रमार्जितुम् ।
न हि दुष्टात्मनामार्यमावसत्यालये चिरम् ॥ अरण्य ५०।१२

कामी पुरुष का स्वभाव नहीं बदला जा सकता । दुष्ट पुरुषों के घर में पुण्य बहुत दिनों तक नहीं रहता ।

३. **त्रीण्येव व्यसनान्यत्र कामजानि भवन्त्युत ।**
मिथ्यावाक्यं तु परमं तस्माद् गुरुतरावुभौ ॥ अर० ९।३
परदाराभिगमनं विना वैरं च रौद्रता ॥ अर० ९।४

कामवासना के कारण मनुष्य में ये तीन बुराइयां आ जाती हैं—झूठ बोलना, पराई स्त्रियों से समागम और शत्रुता के बिना भी क्रूरतापूर्ण व्यवहार ।

४. **औरसीं भगिनीं वापि भार्यां वाप्यनुजस्य यः ।**
प्रचरेत् नरः कामात् तस्य दण्डो वधः स्मृतः ॥ किष् ९।३४

जो मनुष्य अपनी बेटी, बहिन और छोटे भाई की पत्नी के पास जाकर कामवासना पूर्ण करता है उसको मृत्यु दण्ड दिया जाता है ।

५. **न देशकालौ हि यथार्थधर्माववेक्षते कामरतिर्मनुष्यः ॥**
किष्किन्धा ३३।५५

कामासक्त मनुष्य देश, काल, अर्थ और धर्म की भी परवाह नहीं करता ।

६. **महर्षयो धर्मतपोभिरामाः कामानुकामाः प्रतिबद्धमोहाः ॥**
किष्किन्धा ३३।५७

धर्माचरण और तपस्या में लगे रहने वाले और मोह पर भी विजय पा लेने वाले महर्षि भी कभी कभी कामवासना से पीड़ित हो जाते हैं।

७. **अतुष्टं स्वेषु दारेषु चपलं चपलेन्द्रियम् ।**
नयन्ति निकृतिप्रज्ञं परदाराः पराभवम् ॥ सुन्दर २१।८

चंचल इन्द्रियों वाले अस्थिर चित्त जो मनुष्य अपनी स्त्रियों से सन्तुष्ट नहीं रहते ऐसी निकम्मी बुद्धि वाले मनुष्य को परायी स्त्रियां फजीहत में डाल देती हैं ।

८. **वामः कामो मनुष्याणां यस्मिन् किल निबध्यते ।**
जने तस्मिंस्त्वनुक्रोशः स्नेहश्च किल जायते ॥ सुन्दर २२।४

मनुष्यों के लिए कामवासना बड़ी टेढ़ी होती है । मनुष्य जिस के

प्रति कामासक्त हो जाता है उसके प्रति हृदय में दया और स्नेह पैदा हो जाता है ।

९. अकामां कामयानस्य शरीरमुपतप्यते ।
इच्छतीं कामयानस्य प्रीतिर्भवति शोभना ॥ सुन्दर २२।४२

जो स्त्री प्रेम नहीं करती उसकी कामना करने वाले पुरुष का शरीर कामवासना से पीड़ित ही होता है किन्तु अपने से प्रेम रखने वाली नारी से मिलकर हार्दिक प्रसन्नता होती है ।

१०. क्रोधहर्षसमानेन दुर्वर्णकरणेन च ।
शोकसन्तापनित्येन कामेन कलुषीकृतः ॥ युद्ध १२।१७-१८

कामवासना; क्रोध और प्रसन्नता में सदा रहती है, इससे शरीर की कान्ति फीकी पड़ जाती है और उसके कारण मनुष्य सदा शोक और दुख से पीड़ित रहता है । मेरा हृदय भी ऐसी कामवासना से व्याकुल हो गया है ।

क्रोध

१. गृह्यन्ते यदि रोषेण त्वादृशोऽपि विचक्षणाः ।
ततः शास्त्रविपश्चित्वं श्रम एव हि केवलम् ॥ सुन्दर ५२।८

यदि आप जैसे विवेकशील पुरुषों को भी क्रोध आ जाता है तब तो शास्त्रों का अध्ययन व्यर्थ ही माना जाएगा ।

२. कोपं न गच्छन्ति हि सत्त्ववन्तः ॥ सुन्दर ५२।१६

शक्तिसम्पन्न मनुष्य क्रोध नहीं करते हैं ।

३. धन्याः खलु महात्मानो ये बुद्ध्या कोपमुत्थितम् ।
निरुन्धन्ति महात्मानो दीप्तमग्निमिवाम्भसा ॥ सुन्दर ५५।३

वे महापुरुष धन्य हैं जो अपनी विवेकबुद्धि से मन में उठे क्रोध पर उसी प्रकार काबू पा लेते हैं जैसे प्रज्वलित अग्नि को पानी से बुझा देते हैं ।

४. **क्रुद्धः पापं न कुर्यात् कः क्रुद्धो हन्याद् गुरूनपि ।**
क्रुद्ध परुषया वाचा नरः साधूनधिक्षिपेत् ॥ सुन्दर ५५।४

क्रोध में भरा मनुष्य अनुचित काम कर बैठता है । वह गुरुजनों की हत्या भी कर डालता है । क्रोध के आवेश में पुरुष सज्जनों को भी भला बुरा कहने लगता है ।

५. **वाच्यावाच्यं प्रकुपितो न विजानाति कर्हिचित् ।**
नाकार्यमस्ति क्रुद्धस्य नावाच्यं विद्यते क्वचित् ॥ सुन्दर ५५।५

क्रोध में भरा मनुष्य भूल जाता है कि उसे क्या कहना चाहिए और क्या नहीं कहना चाहिए । क्रोधी कोई भी गलत काम और गलत बात कर बैठता है ।

६. **यः समुत्पतितं क्रोधं क्षमयैव निरस्यति ।**
यथोरगस्त्वचं जीर्णां स वै पुरुष उच्यते ॥ सुन्दर ५५।६

जो मनुष्य अपने क्रोध पर क्षमा के द्वारा उसी प्रकार विजय पा लेता है जैसे सांप पुरानी केंचुली छोड़ देता है । वही वास्तव में महापुरुष होता है ।

७. **सर्वे चण्डस्य बिभ्यति ॥** युद्ध २।१९

क्रोधी मनुष्य से सभी डरते हैं ।

८. **त्यजाशु कोपं सुखधर्मनाशनम् ।**
भजस्व धर्मं रतिकीर्तिवर्धनम् ॥ युद्ध ९।२२

सुख और धर्म को नष्ट करने वाले क्रोध को जल्दी से जल्दी त्याग देना चाहिए और सुख तथा यश बढ़ाने वाले धर्म का पालन करना चाहिए।

९. **क्रोधः प्राणहरः शत्रुः कोधो मित्रमुखो रिपुः ।**
क्रोधो ह्यसिर्महातीक्ष्णः सर्वं क्रोधोऽपकर्षति ॥

उत्तर ५९ प्रक्षिप्त २।२१

क्रोध मनुष्य की जान ले लेने वाला दुश्मन है । क्रोध मनुष्य का ऐसा शत्रु होता है जो ऊपर से मित्र दिखाई देता है । क्रोध बहुत तेज

तलवार का काम करता है, क्रोध मनुष्य के सारे गुणों पर पानी फेर देता है ।

१०. तपते यजते चैव यच्च दानं प्रदीयते ।
क्रोधेन सर्वं हरति तस्मात् क्रोधं विसर्जयेत् ॥

उत्तर ५९ प्रक्षिप्त २।२२

क्रोध से मनुष्य का जप, तप, दान और यज्ञ सब कुछ नष्ट हो जाता है, इसलिए हमें क्रोध नहीं करना चाहिए ।

कृतघ्न और कृतज्ञ पुरुष

१. उपकारेण वीरस्तु प्रतिकारेण युज्यते ।
अकृतज्ञोऽप्रतिकृतो हन्ति सत्त्ववतां मनः ॥ किष् २७।४५

किसी के उपकार के बदले वीर पुरुष उपकार करने वाले का भला करता है, किन्तु उपकार न मानने वाले और कृतघ्न पुरुष के आचरण को सज्जन पसन्द नहीं करते ।

२. अर्थिनामुपपन्नानां पूर्वं चाप्युपकारिणाम् ।
आशां संश्रुत्य यो हन्ति स लोके पुरुषाधमः ॥ किष् ३०।७१

पहले उपकार करने वाले पुरुषों की सहायता करने की आशा दिलाकर जो व्यक्ति उपकार करने वालों की अपने घर आने पर भी सहायता नहीं करता उससे नीच पुरुष कोई नहीं होता ।

३. कृतार्था ह्यकृतार्थानां मित्राणां न भवन्ति ये ।
तान् मृतानपि क्रव्यादाः कृतघ्नान् नोपभुञ्जते ॥ किष् ३०।७३

जो मनुष्य स्वार्थसिद्ध हो जाने पर अपने मित्रों के अधूरे कार्य पूरे करने में सहायक नहीं होते ऐसे कृतघ्न पुरुषों के मरने पर हिंसक पशु भी उनका मांस नहीं खाते ।

४. न स क्षमः कोपयितुं यः प्रसाद्यः पुनर्भवेत् ।
पूर्वोपकारं स्मरता कृतज्ञेन विशेषतः ॥ किष् ३१।२०

ऐसे किसी पुरुष को नाराज नहीं करना चाहिए जिसे फिर कभी

मनाने की जरूरत पड़े । कृतज्ञ व्यक्ति को अपने प्रति पहले किये गये उपकारों को ध्यान में रखते हुए इस बात पर अवश्य ध्यान देना चाहिए।

५. **कृतं न प्रतिकुर्याद् यः पुरुषाणां हि दूषकः॥** किष् ३८।२६

जो पुरुष उपकार का बदला नहीं चुकाता वह दुष्ट होता है ।

६. **पूर्वं कृतार्थो मित्राणां न तत्प्रतिकरोति यः ।**
कृतघ्नः सर्वभूतानां स वध्यः प्लवगेश्वर ॥ किष् ३४।१०

वानरराज ! जो मुनष्य अपने मित्रों के उपकार के बदले उनका काम नहीं करता ऐसे कृतघ्न पुरुष को मार डालना चाहिए ।

७. **गोघ्ने चैव सुरापे च चौरे भग्नव्रते तथा ।**
निष्कृतिर्विहिता सद्भिः कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः ॥ किष् ३४।१२

सज्जनों ने गाय के हत्यारे, शराबी, चोर और प्रतिज्ञा आदि व्रत भंग करने वालों के लिए प्रायश्चित्त बतलाया है किन्तु कृतघ्न के लिए नहीं ।

ग

गुरुजन सेवा

१. **स्वर्गो धनं वा धान्यं वा विद्या पुत्राः सुखानि च ।**
गुरुवृत्त्यनुरोधेन न किञ्चिदपि दुर्लभम् ॥ अयोध्या ३०।३६

अपने से बड़ों की सेवा करने से स्वर्ग, धन-धान्य, विद्या, पुत्र और सभी प्रकार के ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं । संसार की ऐसी कोई वस्तु नहीं जो गुरुजन सेवा से न मिल सके ।

२. **पुरुषस्येह जातस्य भवन्ति गुरवः सदा ।**
आचार्यश्चैव काकुत्स्थ पिता माता च राघव ॥ अयो० १११।२

हे रघुनन्दन ! काकुत्स्थकुलभूषण राम ! इस संसार में जन्म लेने वाले पुरुष के आचार्य, माता और पिता ये तीन गुरु होते हैं ।

३. **पिता ह्येनं जनयति पुरुषं पुरुषर्षभ ।**
प्रज्ञां ददाति चाचार्यस्तस्मात् स गुरुरुच्यते ॥ अयोध्या १११।३

पुरुष को जन्म देने के कारण पिता गुरु कहलाता है । आचार्य, मनुष्य को ज्ञान देता है इसलिए उसे गुरु कहा जाता है ।

४. **मातरं पितरं विप्रमाचार्यं चावमन्यते ।**
स पश्यति फलं तस्य प्रेतराजवशं गतः ॥ उत्तर १५।२१

जो मनुष्य माता, पिता, ब्राह्मण और आचार्य का अपमान करता है उसे यमराज के वश में पड़कर अपने इस कर्म का फल भोगना पड़ता है ।

च

चोरी

१. **परस्वानां च हरणं परदाराभिमर्शनम् ।**
सुहृदामतिशङ्का च त्रयो दोषाः क्षयावहाः ॥ युद्ध ८७।२३

पराई वस्तु की चोरी, पराई स्त्री के साथ समागम और अपने मित्रों पर बहुत सन्देह करना—ये तीनों बुरी बातें विनाशकारी होती हैं ।

२. **ब्रह्मस्वं देवताद्रव्यं स्त्रीणां बालधनं च यत् ।**
दत्तं हरति यो भूय इष्टैः सह विनश्यति ॥

उत्तर ५९। प्रक्षिप्त २।४८

जो व्यक्ति देवता, ब्राह्मण, स्त्री और बालक का सौंपा हुआ धन नहीं लौटाता है वह अपने इष्ट बन्धु-बान्धवों समेत नष्ट हो जाता है ।

३. **मनसाऽपि हि देवस्वं ब्रह्मस्वं च हरेत्तु यः ।**
निरयान्निरयं चैव पतत्येव नराधमः ॥ उत्तर ५९। प्रक्षिप्त २।५०

जो मनुष्य मन में भी देवता और ब्राह्मण का धन चुराने की सोचता

है वह एक नरक के बाद दूसरे नरक में पड़ता जाता है ।

त

तपस्या

१. **बहुविघ्नं तपोनित्यं दुश्चरं चैव राघव ॥** अरण्य १०।१४

हे राम ! तपस्या करने में अनेक बाधाएं आती हैं । तपस्या करना बहुत कठिन है ।

२. **कच्चित् ते निर्जिता विघ्नाः कच्चित् ते वर्धते तपः ।**
कच्चित् ते नियतः कोप आहारश्च तपोधन ॥ अरण्य ७४।८

हे तपस्विनी ! क्या तुम ने तपस्या के मार्ग में आने वाली विघ्न-बाधाओं पर विजय पा ली है ? क्या तुम्हारी तपस्या बढ़ती जा रही है? क्या तुम ने अपने क्रोध और भोजन पर नियन्त्रण प्राप्त कर लिया है?

३. **अध्रुवे हि शरीरे यो न करोति तपोऽर्जनम् ।**
स पश्चात् तप्यते मूढो मृतो गत्वाऽऽत्मनो गतिम् ॥ उत्तर १५।२२

नष्ट हो जाने वाले शरीर के रहते हुए जो व्यक्ति तपस्या नहीं करता वह शरीर के नष्ट हो जाने पर पश्चात्ताप करता है क्योंकि तब उसे अपने पूर्वजन्म के कर्मों का फल मिलता है ।

४. **तपो हि परमं श्रेयः सम्मोहमितरत् सुखम् ॥** उत्तर ८४।९

तपस्या से ही परम कल्याण होता है । दूसरे सुख तो धोखामात्र हैं।

दान

१. **अवज्ञया न दातव्यं कस्यचिल्लीलयापि वा ।**
अवज्ञया कृतं हन्याद् दातारं नात्र संशयः ॥ बाल १३।३३-३४

किसी को कोई भी दान अवहेलना या तिरस्कार के साथ नहीं देना चाहिए, क्योंकि अनादर पूर्वक दिया हुआ दान, देने वाले को निश्चय ही नष्ट कर देता है ।

२. **दारप्रदानाद्धि न दानमन्यत् ।**
प्रदृश्यते ज्ञानवतां हि लोके ॥ किष्किन्धा २४।३८

संसार में विद्वानों की दृष्टि में स्त्री दान से बढ़कर और कोई दान नहीं है ।

३. **दत्तस्य हि पुनर्दाने सुमहत् फलमुच्यते ॥** उत्तर ७६।३१

दान में प्राप्त किसी वस्तु को फिर दान कर देने का फल बहुत अच्छा होता है ।

४. **अनुप्तं रोहते श्वेत न कदाचिन्महामते ॥** उत्तर ७८।१५

हे महामति श्वेत मुनि ! दानरूपी बीज बोये बिना कुछ भी पैदा नहीं होता है ।

दुर्गुण-मद्यपान

न हि धर्मार्थसिद्ध्यर्थं पानमेवं प्रशस्यते ।
पानादर्थश्च कामश्च धर्मश्च परिहीयते ॥ किष्किन्धा ३३।४६

धर्म और अर्थ कमाने के लिए मद्यपान अच्छा नहीं समझा जाता। शराब पीने से धर्म, अर्थ और काम ये तीनों नष्ट हो जाते हैं ।

दुष्टा स्त्री

१. **असत्यः सर्वलोकेऽस्मिन् सततं सत्कृताः प्रियैः ।**
भर्तारं नानुमन्यन्ते विनिपातगतं स्त्रियः ॥ अयोध्या ३९।२०

अपने प्रिय पतियों से निरन्तर सम्मान प्राप्त करने पर भी जो स्त्रियां पति के संकट में पड़ने पर उसका आदर नहीं करतीं वे असती कहलाती हैं ।

२. **एष स्वभावो नारीणामनुभूय पुरा सुखम् ।**
अल्पामप्यापदं प्राप्य दुष्यन्ति प्रजहत्यपि ॥ अयोध्या ३९।२१

दुष्टा स्त्रियों का यही स्वभाव होता है कि वे पति के साथ पहले सुख भोगकर पति के थोड़ी सी विपत्ति में पड़ते ही उसे दोष देती हैं और उसका साथ भी छोड़ देती हैं ।

३. **असत्यशीला विकृता दुर्गा अहृदयाः सदा ।**
असत्यः पापसङ्कल्पाः क्षणमात्रविरागिणः ॥ अयोध्या ३९।२२

असती पत्नियां झूठ बोलती हैं, बुरा आचरण करती हैं, बुरे लोगों के साथ सम्बन्ध रखती हैं, पति के साथ सदा क्रूर व्यवहार करती हैं, पापपूर्ण कर्म करती रहती हैं और क्षणभर में पति से विरक्त हो जाती हैं ।

४. **न कुलं न कृतं विद्या न दत्तं नापि संग्रहः ।**
स्त्रीणां गृह्णाति हृदयमनित्यहृदया हि ताः ॥ अयोध्या ३९।२३

दुष्टा स्त्रियों का हृदय पति के उत्तम कुल, उसके उपकारों, विद्या, उसके उपहारों तथा पति के स्नेह और आदर सत्कार (संग्रह) से भी वश में नहीं हो पाता, क्योंकि वे निष्ठुर और चंचल चित्त होती हैं ।

५. **कुब्जानिमित्तं कैकेय्या राघवाणां कुलं हतम् ॥** अयो०६६।६

कैकेयी ने कुबड़ी दासी की बातों में आकर रघुवंश का नाश कर डाला ।

६. **न त्वेवमनुगच्छन्ति गुणदोषमसत्स्त्रियः ।**
कामवक्तव्यहृदया भर्तृनाथाश्चरन्ति याः ॥ अयोध्या ११७।२६

अपने पति को काबू में रखने वाली और कामवासना से व्याकुल चित्त वाली दुष्टा स्त्रियां पति के अनुकूल आचरण नहीं करतीं वे गुण-दोष की भी परवाह नहीं करतीं । स्वच्छन्द हो घूमती फिरती हैं ।

७. **प्राप्नुवन्त्ययशश्चैव धर्मभ्रंशं च मैथिलि ।**
अकार्यवशमापन्नाः स्त्रियो याः खलु तद्विधाः ॥ अयो०११७।२७

हे सीता ! ऐसी दुष्टा स्त्रियां अनुचित कार्यों में फंसकर धर्मभ्रष्ट हो जाती हैं । संसार में ऐसी स्त्रियों की बदनामी ही होती है ।

दूत

१. **भूताश्चार्था विनश्यन्ति देशकालविरोधतः ।**
विक्लवं दूतमासाद्य तमः सूर्योदयं यथा ।। सुन्दर २।३९।३०।३७

अयोग्य दूत द्वारा समय और परिस्थिति के विपरीत आचरण करने के कारण बने-बनाये काम भी उसी प्रकार बिगड़ जाते हैं जैसे सूर्य उदय होने पर अन्धकार दूर हो जाता है ।

२. **घातयन्तीह कार्याणि दूताः पण्डितमानिनः ।।**
सुन्दर २।४०।।३०।३८

अपने को बहुत होशियार समझने वाले विवेकहीन दूत सारे काम चौपट कर देते हैं ।

३. **वधं न कुर्वन्ति परावरज्ञा दूतस्य सन्तो वसुधाधिपेन्द्राः ।।**
सुन्दर ५२।५

ऊंच-नीच का ध्यान रखने वाले राजा दूत की हत्या नहीं करते।

४. **दूता न वध्याः समयेषु राजन् सर्वेषु सर्वत्र वदन्ति सन्तः।।**
सुन्दर ५२।१३

हे राजा ! सज्जनों का यही मत है कि दूत को किसी भी हालत में नहीं मारना चाहिए ।

५. **न दूतवध्यां प्रवदन्ति सन्तो दूतस्य दृष्टा बहवो हि दण्डाः।।**
सुन्दर ५२।१४

सज्जन दूत का वध उचित नहीं मानते । दूत को अन्य अनेक दण्ड दिये जा सकते हैं ।

६. **वैरूप्यमङ्गेषु कशाभिघातो मौण्ड्यं तथा लक्षणसन्निपातः।**
एतान् हि दूते प्रवदन्ति दण्डान् वधस्तु दूतस्य न नः श्रुतोऽस्ति।।
सुन्दर ५२।१५

दूत के शरीर का कोई अंग बिगाड़ देना, उसे कोड़े लगाना, सिर मुंडवा देना, या शरीर दाग देना आदि दण्ड दूत को दिये जाते हैं, उसे मार देना हम ने कभी नहीं सुना ।

७. **साधुर्वा यदि वासाधुः परैरेष समर्पितः ।**
ब्रुवन् परार्थं परवान् न दूतो वधमर्हति ॥ सुन्दर ५२।२१

दूत अच्छी बात कहता है या बुरी वह तो सदा पराधीन होता है और वह हमारे शत्रु के भले की ही बात कहेगा । दूत को मारना उचित नहीं होता ।

८. **दूतवध्या न दृष्टा हि राजशास्त्रेषु राक्षस ।**
दूतेन वेदितव्यं च यथाभिहितवादिना ॥ सुन्दर ५८।१४९

हे राक्षसराज ! राजनीतिशास्त्र के ग्रन्थों में कहीं भी दूत को मार डालने की बात नहीं कही गई है । दूत से जो सन्देश भिजवाया जाता है उसे वह बता देता है ।

९. **सुमहत्यपराधेऽपि दूतस्यातुलविक्रम ।**
विरूपकरणं दृष्टं न वधोऽस्ति शास्त्रतः ॥ सुन्दर ५८।१५०

अनुपमविक्रमसम्पन्न रावण ! दूत के महान् अपराध करने पर उसके शरीर को विकृत कर देने का दण्ड लिखा है, शास्त्रों में दूत को मारने की बात नहीं है ।

१०. **यस्तु हित्वा मतं भर्तुः स्वमतं सम्प्रधारयेत् ।**
अनुक्तवादी दूतः सन् स दूतो वधमर्हति ॥ युद्ध २०।१८

जो दूत अपने स्वामी का अभिप्राय न बताकर अपने मन की बात कहता है अतः बिना कही बात कहने वाले को मृत्युदण्ड देना उचित होता है ।

११. **न्यस्तशस्त्रौ गृहीतौ च न दूतौ वधमर्हथः ॥** युद्ध २५।२०

तुम दोनों दूत बिना हथियारों के पकड़े गये हो अतः तुम्हें मारना उचित नहीं है ।

ध

धर्म

१. **धर्मादर्थः प्रभवति धर्मात् प्रभवते सुखम् ।
धर्मेण लभते सर्वं धर्मसारमिदं जगत् ॥** अरण्य ९।३०

धर्म का पालन करने से धन, सुख और संसार की प्रत्येक मनचाही वस्तु प्राप्त होती है । इस संसार में धर्म ही सब कुछ है ।

२. **सूक्ष्मः परमदुर्ज्ञेयः सतां धर्मः प्लवङ्गम ।
हृदिस्थः सर्वभूतानामात्मा वेद शुभाशुभम् ॥** किष् १८।१५

वानर ! सज्जनों का धर्माचरण अत्यन्त सूक्ष्म होता है और इसे जल्दी ही नहीं समझा जा सकता । सभी प्राणियों के हृदयों में विराजमान प्रभु ही हमारे लिए अच्छी और बुरी बात को जानते हैं ।

३. **न हि धर्मविरुद्धेषु बह्वपायेषु कर्मसु ।
मूलघातिषु सज्जन्ते बुद्धिमन्तो भवद्विधाः ॥** किष् ५१।१८

आप जैसे बुद्धिमान् पुरुष धर्म के विपरीत कामों में नहीं पड़ते क्योंकि ऐसे कार्य अनेक अनर्थों से भरे होते हैं और धर्मविरुद्ध आचरण करने वाले मनुष्य का सर्वनाश कर डालते हैं ।

४. **धर्मश्चाधर्मनाशनः ॥** किष् ५१।२८

धर्म का पालन करने से मनुष्य के अधर्माचरणों का फल नष्ट हो जाता है ।

५. **धर्मो वै ग्रसतेऽधर्मं यदा कृतमभूद् युगम् ।
अधर्मो ग्रसते धर्मं यदा तिष्यः प्रवर्तते ॥** युद्ध ३५।१४

सत्य युग में धर्म बलवान् होने के कारण अधर्माचरण को परास्त कर देता है, किन्तु कलियुग में धर्म पर अधर्म विजय पा लेता है ।

६. **धर्मात् प्रच्युतशीलं हि पुरुषं पापनिश्चयम् ।
त्यक्त्वा सुखमाप्नोति हस्तादाशीविषं यथा ॥** युद्ध ८७।२१

धर्म का पालन न करने वाले और पापाचरण का निश्चय कर लेने वाले पुरुष का साथ छोड़ देने पर प्राणी उसी प्रकार सुख अनुभव करता है जैसे अपने हाथ पर बैठे सांप को भगा देने पर ।

७. **धर्मो हि परमा गतिः ॥** उत्तर ३।१०

धर्माचरण ही सब से उत्तम कार्य होता है ।

८. **न हि धर्माभिरक्तानां लोके किञ्चन दुर्लभम् ॥** उत्तर १०।३३

धर्म का पालन करने वालों के लिए संसार में कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं रहती ।

९. **साधु धर्मे व्यवस्थानं क्रियतां यदि शक्यते ॥** उत्तर १३।१८

यदि सम्भव हो तो धर्म पर चलना चाहिए, इसी में भलाई है।

१०. **धर्माद् राज्यं धनं सौख्यमधर्माद् दुःखमेव च ।**
तस्माद् धर्मं सुखार्थाय कुर्यात् पापं विसर्जयेत् ॥ उत्तर १५।२३

धर्माचरण करने से राज्य, धन-धान्य और सुख मिलता है । अधर्म का पालन करने का परिणाम दुःख ही होता है, इसलिए पाप का आचरण छोड़कर जीवन को सुखी बनाने के लिए धर्म का पालन करना चाहिए ।

११. **पापस्य हि फलं दुःखं तद् भोक्तव्यमिहात्मना ।**
तस्मादात्मघातार्थं मूढः पापं करिष्यति ॥ उत्तर १५।२४

पाप कर्म का अन्तिम परिणाम दुःख ही होता है जिसे पापी पुरुष को भोगना पड़ता है । अतः मूर्ख लोग अपना नाश करने के लिए पाप करते हैं ।

१२. **धारणाद् धर्ममित्याहुर्धर्मेण विधृताः प्रजाः ।**
यस्माद् धारयते सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥

उत्तर ५९। प्रक्षिप्त २।७

सभी चल और अचल प्राणियों तथा तीनों लोकों का आधार धर्म ही है । धर्म ही प्रजा का पालन करता है इसीलिए सभी लोकों

और इनके समस्त प्राणियों को धारण करने के कारण यह धर्म कहलाता है ।

१३. न हि धर्माद् भवेत् किञ्चिद् दुष्प्रापमिति मे मतिः ॥

उत्तर ५९। प्रक्षिप्त २।९

धर्माचरण के द्वारा संसार की कोई वस्तु दुर्लभ नहीं रहती ।

धैर्य

व्यसने वार्थकृच्छ्रे वा भये वा जीवितान्तगे ।
विमृशंश्च स्वया बुद्ध्या धृतिमान् नावसीदति ॥ किष् ७।९

विपत्ति और शोक में, आर्थिक संकट में प्राणों का संकट पैदा हो जाने वाली भय से परिपूर्ण परिस्थिति में अपनी बुद्धि से संकट दूर करने का उपाय सोचने वाला और धैर्य धारण करने वाला पुरुष कष्ट नहीं भोगता ।

बालिशस्तु नरो नित्यं वैक्लव्यं योऽनुवर्तते ।
स मज्जत्यवशः शोके भाराक्रान्तेव नौर्जले ॥ किष्किन्धा ७।१०

जो मूर्ख व्यक्ति सदा घबराता रहता है वह भार से लदी हुई नाव की तरह शोकसागर में डूबा रहता है ।

न

नारी–स्वभाव

१. **यथा यथा सान्त्वयिता वश्यः स्त्रीणां तथा तथा॥** सुन्दर २२।२

जैसे जैसे पुरुष, स्त्री की प्रशंसा करता है वैसे ही वैसे नारी उसके वश में होती जाती है ।

२. **स्त्रीणां यौवनमध्रुवम् ॥** सुन्दर २४।३४

स्त्रियों का यौवन टिकने वाला नहीं होता ।

३. **प्रमदा शीलसम्पूर्णा पत्येव च विधर्मणा ॥** किष् १७।४२

शील गुणसम्पन्ना नारी पापी पति को पाकर सुरक्षित अनुभव नहीं करती ।

४. **एषा हि प्रकृतिः स्त्रीणामासृष्टे रघुनन्दन ।**
समस्थमनुरज्यन्ते विषमस्थं त्यजन्ति च ॥ अरण्य १३।५

सृष्टि के प्रारम्भ से ही स्त्रियों का यही स्वभाव रहा है कि वे पति के वैभवशाली होने पर उससे प्रेम करती हैं किन्तु पति के निर्धन हो जाने या संकट में पड़ जाने पर उसे छोड़ देती हैं ।

५. **शतह्रदानां लोलत्वं शस्त्राणां तीक्ष्णतां तथा ।**
गरुडानिलयो शैघ्र्यमनुगच्छन्ति योषितः ॥ अरण्य १३।६

स्त्रियों में बिजली जैसी चंचलता और अस्थिरता, हथियारों जैसा पैनापन तथा गरुड़ पक्षी और वायु जैसी शीघ्रता होती है ।

६. **वाक्यमप्रतिरूपं तु न चित्रं स्त्रीषु मैथिलि ।**
स्वभावस्त्वेष नारीणामेषु लोकेषु दृश्यते ॥ अरण्य ४५।२९

हे सीता ! अनुचित बातें कहना स्त्रियों के लिए कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है, क्योंकि संसार में नारियों का ऐसा ही स्वभाव दीखता है।

७. **विमुक्तधर्माश्चपलास्तीक्ष्णा भेदकराः स्त्रियः ॥** अरण्य ४५।३०

स्त्रियां प्रायः धर्माचरण नहीं करतीं, उनका स्वभाव चंचल और कठोर होता है तथा वे परिवार में फूट डाल देती हैं ।

८. **न गृहाणि न वस्त्राणि न प्राकारस्तिरस्क्रिया ।**
नेदृशा राजसत्कारा वृत्तमावरणं स्त्रियः ॥ युद्ध ११४।२७

घर, वस्त्र, चहारदीवारी, घूंघट और लोगों को दूर रखने के राजकीय प्रयत्न स्त्री के लिए परदे का काम नहीं करते ।

९. **व्यसनेषु न कृच्छ्रेषु न युद्धेषु न स्वयम्वरे ।**
न क्रतौ नो विवाहे वा दर्शनं दूष्यते स्त्रियः ॥ युद्ध ११४।२८

विपत्ति में, दुःख-दर्द में, युद्ध में, स्वयम्वर में, यज्ञ में और विवाह में स्त्री का दीखना बुरी बात नहीं मानी जाती ।

१०. गतिरेका पतिर्नार्या द्वितीया गतिरात्मजः ।
तृतीयो ज्ञातयो राजंश्चतुर्थी नैव विद्यते ॥ अयोध्या ६१।२४

राजन् ! नारी का पहला सहारा उसका पति होता है, दूसरा सहारा उसका पुत्र तथा अन्तिम आश्रयस्थल उसे पिता, भाई आदि होते हैं । इनके अतिरिक्त स्त्री का और कोई सहारा नहीं होता ।

११. अवध्याः सर्वभूतानां प्रमदाः क्षम्यतामिति ॥ अयोध्या ७८।२१

किसी भी प्राणी के लिए स्त्रियों को मारना उचित नहीं होता इसलिए आप इन्हें क्षमा करें ।

१२. विद्यते स्त्रीषु चापल्यम् ॥ युद्ध १६।९

स्त्रियों में चंचलता होती है ।

प

पति-पत्नी

१. जीवन्त्या हि स्त्रिया भर्ता दैवतं प्रभुरेव च ॥ अयोध्या २४।२१

स्त्री के जीते जी उसका पति ही उसके लिए देवता और ईश्वर तुल्य है ।

२. भर्तुः शुश्रूषया नारी लभते स्वर्गमुत्तमम् ॥ अयोध्या २४।२६

पति की सेवा शुश्रूषा से नारी को उत्तम स्वर्ग की प्राप्ति होती है।

३. प्रासादाग्रे विमानैर्वा वैहायसगतेन वा ।
सर्वावस्थागता भर्तुः पादच्छाया विशिष्यते ॥ अयोध्या २७।९

महलों मे रहने, विमानों में घूमने या अणिमा आदि सिद्धियों के बल पर आकाश में विचरण करने की अपेक्षा सभी अवस्थाओं में पति

के चरणों में रहना पत्नी के लिए सब से अच्छा होता है ।

४. **भर्तुर्भाग्यं तु नार्येका प्राप्नोति पुरुषर्षभ ॥** अयोध्या २७।५

नरश्रेष्ठ ! केवल नारी ही अपने पति के भाग्य का फल पाती है ।

५. **साध्वीनां तु स्थितानां तु शीले सत्ये श्रुते स्थिते ।**
स्त्रीणां पवित्रं परमं पतिरेको विशिष्यते ॥ अयोध्या ३९।२४

सदाचार, सत्याचरण और शास्त्रानुकूल व्यवहार करने वाली कुलीन और साध्वी स्त्रियों के लिए पति ही एकमात्र परम आश्रय होता है ।

६. **नातन्त्री वाद्यते वीणा नाचक्रो विद्यते रथः ।**
नापतिः सुखमेधते या स्यादपि शतात्मजा ॥ अयोध्या ३९।२९

जैसे तारों के बिना वीणा के स्वर नहीं निकल सकते और पहिये के बिना रथ नहीं चल सकता । उसी प्रकार सौ बेटों की मां होने पर भी स्त्री को पति के बिना सुख नहीं मिलता ।

७. **मितं ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः ।**
अमितस्य तु दातारं भर्तारं का न पूजयेत् ॥ अयोध्या ३९।३०

स्त्री को पिता, भाई और पुत्र थोड़ा ही सुख दे पाते हैं, अतः भरपूर सुख देने वाले पति की पूजा कौन स्त्री नहीं करेगी ?

८. **स्त्रिया भर्ता हि दैवतम् ॥** अयोध्या ३९।३१

पति ही स्त्री का देवता होता है ।

९. **पतिशुश्रूषणान्नार्यास्तपो नान्यद् विधीयते ॥** अयोध्या ११८।९

स्त्री के लिए पति की सेवा से बढ़कर अन्य कोई तपस्या नहीं है ।

१०. **नगरस्थो वनस्थो वा शुभो वा यदि वाशुभः ।**
यासां स्त्रीणां प्रियो भर्ता तासां लोका महोदयाः ॥

अयोध्या ११७।२३

पति शहर में रहे या वन में, वह भला हो या बुरा। जिन स्त्रियों को अपना पति अच्छा लगता है उन्हें अच्छे लोक प्राप्त होते हैं।

११. दु:शील: कामवृत्तो वा धनैर्वा परिवर्जित: ।
स्त्रीणामार्यस्वभावानां परमं दैवतं पति: ॥ अयोध्या ११७।२४

पति दुश्चरित्र हो या मनमानी करने वाला हो अथवा वह गरीब भी क्यों न हो किन्तु श्रेष्ठ स्वभाव की स्त्रियों के लिए पति ही देवता होता है।

१२. पतिहीना तु या नारी कामं भवतु पुत्रिणी ।
धनधान्यसमृद्धापि विधवेत्युच्यते जनै: ॥ किष् २३।१२-१३

बिना पति वाली नारी के चाहे पुत्र और धन-धान्य की समृद्धि क्यों न हो किन्तु लोग उसे विधवा ही कहते हैं।

१३. भर्ता नाम परं नार्या: शोभनं भूषणादपि ॥ सुन्दर १६।२५

पत्नी के लिए उसका पति किसी आभूषण से भी अधिक शोभायुक्त होता है।

१४. प्रथमं मरणं नार्या भर्तुर्वैगुण्यमुच्यते ॥ युद्ध ३२।९

पत्नी से पहले पति की मृत्यु नारी के लिए बहुत दु:खद होती है।

१५. पतिव्रतानां नाकस्मात् पतन्त्यश्रूणि भूतले ॥ युद्ध १११।६७

पतिव्रता नारियों के आंसू पृथ्वी पर गिरकर व्यर्थ नहीं जाते।

१६. भयानामपि सर्वेषां वैधव्यं व्यसनं महत् ॥ उत्तर २५।४३

वैधव्य ही नारी की सब से बड़ी विपत्ति होती है।

१७. न हि तुल्यं बलं सौम्य स्त्रियाश्च पुरुषस्य हि ॥ उत्तर २६।५१

नारी में पुरुष के समान शारीरिक शक्ति नहीं होती।

१८. पतिर्हि देवता नार्याः पतिर्बन्धुः पतिर्गुरुः ।
प्राणैरपि प्रियं तस्मात् भर्तुः कार्यं विशेषतः ॥

उत्तर ४८।१७-१८

स्त्री का पति ही उसके लिए देवता, बन्धु और गुरु होता है इसलिए पत्नी को अपने प्राण देकर भी पति का हित करना चाहिए ।

१९. दैवतं हि पतिः स्त्रियाः ॥ उत्तर ९५।१०

स्त्री का पति उसके लिए देवता के समान होता है ।

पापाचरण

१. राजहा ब्रह्महा गोघ्नश्चोरः प्राणिवधे रतः ।
नास्तिकः परिवेत्ता च सर्वे निरयगामिनः ॥ किष्किन्धा १७।३६

राजा, ब्राह्मण, गौ और अन्य प्राणियों को मारने वाला, चोरी करने वाला, नास्तिक और बड़े भाई के विवाह से पहले अपना विवाह करने वाला नरक जाता है ।

२. सूचकश्च कदर्यश्च मित्रघ्नो गुरुतल्पगः ।
लोकं पापात्मनामेते गच्छन्ते नात्र संशयः ॥ किष्किन्धा १७।३७

चुगलखोर, कंजूस, मित्र की हत्या करने वाले और गुरु की पत्नी से समागम करने वाले व्यक्ति निश्चय ही नरक में जाते हैं ।

३. निर्मर्यादस्तु पुरुषः पापाचारसमन्वितः ।
मानं न लभते सत्सु भिन्नचारित्रदर्शनः ॥ अयोध्या १०९।३

धर्म की मर्यादा तोड़ देने वाले, पापाचरण करने वाले और आचार-विचार से हीन पुरुष का सज्जन कभी आदर नहीं करते ।

४. कुलीनमकुलीनं वा वीरं पुरुषमानिनम् ।
चारित्रमेव व्याख्याति शुचिं वा यदि वाशुचिम् ॥ अयो०१०९।४

मनुष्य के आचार-व्यवहार से ही पता चलता है कि वह कुलीन है या नीच कुल में उत्पन्न हुआ है । कौन वीर है और कौन वीरता का दिखावा कर रहा है तथा किसका आचरण पवित्र है और

किसका दूषित ।

पुत्र

१. **पितुर्हि समतिक्रान्तं पुत्रो यः साधु मन्यते ।**
तदपत्यं मतं लोके विपरीतमतोऽन्यथा ॥ अयोध्या १०६।१५

जो पुत्र अपने पिता की कोई भूल सुधार देता है वही संसार में अच्छा माना जाता है । विपरीत आचरण वाले पुत्र की सराहना नहीं की जाती ।

२. **पुन्नाम्नो नरकाद् यस्मात् पितरं त्रायते सुतः ।**
तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः पितॄन् यो पाति सर्वतः ॥
अयोध्या १०७।१२

बेटा पुत् नाम के नरक से पिता की रक्षा करता है इसीलिए वह पुत्र कहलाता है । पुत्र अपने सभी पितरों की रक्षा करता है ।

३. **यवीयानात्मनः पुत्रः शिष्यश्चापि गुणोदितः ।**
पुत्रवत्ते त्रयश्चिन्त्या धर्मश्चैवात्रकारणम् ॥ किष्किन्धा १८।१४

छोटा भाई, पुत्र और गुणी शिष्य इन तीनों को अपने पुत्र के समान मानना चाहिए । इस विचार का समर्थन धर्म भी करता है ।

४. **दुर्वृत्तिमपि कः पुत्रं त्यजेद् भुवि विचक्षणः ॥** अयोध्या ६४।६४

बुद्धिमान् पुरुष भी अपने दुराचारी पुत्र को नहीं छोड़ पाते ।

५. **नास्ति पुत्रसमः प्रियः ॥** अयोध्या ७४।२४

माता को, पुत्र के समान दूसरा कोई भी प्रिय नहीं होता ।

६. **शक्रो न सुतान् मन्यते परम् ॥** अयोध्या ७४।२५

इन्द्र भी मानते हैं कि पुत्रों से बढ़कर प्रिय माता के लिए कुछ भी नहीं है ।

७. **अङ्गप्रत्यङ्गजः पुत्रो हृदयाच्चाभिजायते ।**
तस्मात् प्रियतरो मातुः प्रिया एव तु बान्धवाः ॥
अयोध्या ७४।१४

पुत्र, माता के प्रत्येक अंग से और हृदय से उत्पन्न होता है, इसलिए वह माता को सब से अधिक प्रिय होता है, दूसरे बन्धु बान्धव प्रिय ही होते हैं ।

८. **न त्वां पश्यामि कौसल्ये साधु मां पाणिना स्पृश ।**
रामं मेऽनुगता दृष्टिरद्यापि न निवर्तते ॥ अयोध्या ४२।३४

कौसल्या ! मैं तुम्हें नहीं देख पा रहा हूं इसलिए तुम मुझे अपने हाथ से छुओ, क्योंकि राम के पीछे गई मेरी दृष्टि अभी तक नहीं लौटी है ।

भय

१. **भये सर्वे हि बिभ्यति ॥** किष्किन्धा ८।३५

भय का कारण उपस्थित होने पर सभी मनुष्य डर जाते हैं ।

२. **भगवन् प्राणिनां नित्यं नान्यत्र मरणाद् भयम् ।**
नास्ति मृत्युसमः शत्रुरमरत्वमहं वृणे ॥ उत्तर १०।१६

हे प्रभो ! जीवधारियों को सदा मरने का डर सताता रहता है। मृत्यु से बढ़कर हमारा कोई और शत्रु नहीं है इसलिए मैं अमर होना चाहता हूं ।

भरत

१. **क्रोशमात्रे त्वयोध्यायाश्चीरकृष्णाजिनाम्बरम् ।**
ददर्श भरतं दीनं कृशमाश्रमवासिनम् ॥ युद्ध १२५।२९-३०

अयोध्या से एक कोस की दूरी पर उन्होंने आश्रमवासी भरत को देखा । उन्होंने फटे पुराने कपड़े और कृष्णमृग की खाल पहिनी हुई थी। वे कमजोर और दुखी थे ।

२. नियतं भावितात्मानं ब्रह्मर्षिसमतेजसम् ।
पादुके ते पुरस्कृत्य प्रशासन्तं वसुन्धराम् ॥ युद्ध १२५।३२

उनकी दिनचर्या नियमित थी, उनका हृदय पवित्र था और वे किसी ब्रह्मर्षि के समान तेजस्वी दीख रहे थे । भरत श्रीराम की खड़ाऊं सामने रखकर पृथिवी का शासन चला रहे थे ।

३. उपस्थितममात्यैश्च शुचिभिश्च पुरोहितैः ।
बलमुख्यैश्च युक्तैश्च काषायाम्बरधारिभिः ॥ युद्ध १२५।३३

उनके मन्त्री, पुरोहित और सेनापति भी गेरुए कपड़े पहिनते थे और योगाभ्यास करते थे ।

४. न हि ते राजपुत्रं तं चीरकृष्णाजिनाम्बरम् ।
परिभोक्तुं व्यवस्यन्ति पौरा वै धर्मवत्सलाः ॥ युद्ध १२५।३४

अयोध्या के धर्मप्रेमी निवासी राजकुमार भरत को पुराने कपड़े और काले मृग की छाल पहिनते देख स्वयं भी भोग ऐश्वर्य में लिप्त नहीं थे ।

५. पादुके ते तु रामस्य गृहीत्वा भरतः स्वयम् ।
चरणाभ्यां नरेन्द्रस्य योजयामास धर्मवित् ॥ युद्ध १२७।५४

धर्मज्ञ भरत ने श्रीराम की चरण पादुकाएं अपने हाथों में लेकर स्वयं श्रीराम के चरणों में पहिना दीं ।

६. अब्रबीच्च तदा रामं भरतः स कृताञ्जलिः ।
एतत् ते सकलं राज्यं न्यासं निर्यातितं मया ॥ युद्ध १२७।५५

तब भरत ने हाथ जोड़ कर राम से कहा, मेरे पास धरोहर के रूप में रखा हुआ आपका सारा राज्य आज मैंने आपको सौंप दिया ।

७. अवेक्षतां भवान् कोशं कोष्ठागारं गृहं बलम् ।
भवतस्तेजसा सर्वं कृतं दशगुणं मया ॥ युद्ध १२७।५६

आप राज्य का खजाना, कोठार, घर और सेना सभी कुछ देख लें । मैंने आप के प्रभाव से इन सभी वस्तुओं को दस गुना बढ़ा

दिया है ।

८. **पूजिता मामिका माता दत्तं राज्यमिदं मम ।**
तद् ददामि पुनस्तुभ्यं यथा त्वमददा मम ॥ युद्ध १२८।२

आपने मेरी माता कैकयी का सम्मान किया, यह राज्य मुझे दे दिया। जैसे आपने मुझे यह राज्य सौंपा था, उसी प्रकार मैं इसे फिर आपको लौटा रहा हूं ।

९. **यावदावर्तते चक्रं यावती च वसुन्धरा ।**
तावत् त्वमिह लोकस्य स्वामित्वमनुवर्तय ॥ युद्ध १२८।११

हे राम ! जब तक यह नक्षत्रमण्डल घूमता रहता है और जब तक यह पृथ्वी बनी रहती है तब तक आप इस संसार के स्वामी बने रहें।

१०. **सत्येनाहं शपे राजन् स्वर्गभोगेन चैव हि ।**
न कामये यथा राज्यं त्वां विना रघुनन्दन ॥ उत्तर १०७।६

हे राजा राम ! मैं सत्य की शपथ लेकर कह रहा हूं कि आपके बिना मुझे न तो राज्य और न ही स्वर्ग का सुख चाहिए ।

भाग्य–दैव

१. **दैवं चेष्टयते सर्वं हतं दैवेन हन्यते ॥** युद्ध ११०।२३

भाग्य ही मनुष्य से सब कुछ कराता है और भाग्य का मारा मर जाता है ।

२. **नैवार्थेन च कामेन विक्रमेण न चाज्ञया ।**
शक्या दैवगतिर्लोके निवर्तयितुमुद्यता ॥ युद्ध ११०।२४

कर्मफल देने के लिए तैयार भाग्य का विधान धन, कामना, पराक्रम और किसी की आज्ञा से पलटा नहीं जा सकता ।

३. **दैवेनाक्रम्यते सर्वं दैवं हि परमा गतिः ॥** बाल ५८।२३

भाग्य सभी पर प्रहार करता है, भाग्य ही मनुष्यमात्र की परम गति है ।

४. **कश्च दैवेन सौमित्रे योद्धुमुत्सहते पुमान् ।**
यस्य तु ग्रहणं किञ्चित् कर्मणोऽन्यत्र न दृश्यते ॥

अयोध्या २२।२१

हे लक्ष्मण ! कौन पुरुष भाग्य से लड़ सकता है, क्योंकि सुख दुःख आदि कर्मों का फल मिलने पर ही भाग्य का पता चलता है ।

५. **सुखदुःखे भयक्रोधौ लाभालाभौ भवाभवौ ।**
यस्य किञ्चित् तथाभूतं ननु दैवस्य कर्म तत् ॥ अयोध्या २२।२२

सुख-दुःख, भय-क्रोध, लाभ-हानि, उत्पत्ति और विनाश तथा अन्य जिन बातों का कारण समझ नहीं आता उन सब का करने वाला भाग्य ही होता है ।

६. **ऋषयोऽप्युग्रतपसो दैवेनाभिप्रचोदिताः ।**
उत्सृज्य नियमांस्तीव्रान् भ्रश्यन्ते काममन्युभिः ॥

अयोध्या २२।२३

भाग्य की प्रेरणा से कठोर तपस्या करने वाले ऋषि भी काम-क्रोध के वश में आकर अपने कड़े नियमों को छोड़ बैठते हैं ।

७. **विक्लवो वीर्यहीनो यः स दैवमनुवर्तते ।**
वीराः सम्भावितात्मानो न दैवं पर्युपासते ॥ अयोध्या २३।१६

कायर और कमजोर पुरुष ही भाग्य की दुहाई दिया करते हैं। वीर और समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त व्यक्ति भाग्य का सहारा नहीं लेते ।

८. **दैवं पुरुषकारेण यः समर्थः प्रतिबाधितुम् ।**
न दैवेन विपन्नार्थः पुरुषः सोऽवसीदति ॥ अयोध्या २३।१७

जो मनुष्य अपने पुरुषार्थ से भाग्य को दबा देता है वह भाग्य के कारण बाधाएं आने पर भी दुःखी नहीं होता ।

९. **न हि भारोऽस्ति दैवस्य सर्वभूतेषु लक्ष्मण ॥** अरण्य ६९।४९

हे लक्ष्मण ! सभी प्राणियों पर शासन चलाना भाग्य के लिए कठिन नहीं होता ।

१०. त्रयोऽपि लोका विहितं विधानं नातिक्रमन्ते वशगा हि तस्य॥

किष् २४।४२

विधि का विधान तीनों लोक भी नहीं टाल सकते, वे सब भाग्य के वश में हैं ।

११. विधिः किल नरं लोके विधानेनानुवर्तते ॥ किष् ५६।४

विधि के विधान के अनुसार मनुष्य को उसके कर्मों का फल मिलता है ।

१२. विधिर्नूनमसंहार्यः प्राणिनां प्लवगोत्तम ॥ सुन्दर ३७।४

वानरशिरोमणि ! विधि का विधान पलटना प्राणियों के वश की बात नहीं ।

१३. नियतिः कारणं लोके नियतिः कर्मसाधनम् ।
नियतिः सर्वभूतानां नियोगेष्विह कारणम् ॥ किष् २५।४

संसार में भाग्य ही सब का कारण है । भाग्य से ही सब काम सिद्ध होते हैं । भाग्य ही सब प्राणियों को उनके कामों में लगाता है।

मध्यस्थ

अन्या मध्यस्थचिन्ता तु विमर्दाभ्यधिकोदया ॥

अयोध्या २।१६

किसी एक पक्ष वाले पुरुष के विचारों की तुलना में मध्यस्थ पुरुष के विचार कहीं अच्छे होते हैं ।

मन्त्री

१. कच्चिदात्मसमाः शूराः श्रुतवन्तो जितेन्द्रियाः ।
कुलीनाश्चेङ्गितज्ञाश्च कृतास्ते तात मन्त्रिणः ॥

अयोध्या १००।१५

हे भाई ! क्या तुमने अपने ही जैसे शूरवीर, विद्वान्, संयमी, कुलीन और इशारे से ही मन की बात समझने वाले लोगों को मन्त्री नियुक्त किया है ?

२. **मन्त्रो विजयमूलं हि राज्ञां भवति राघव ।**
सुसंवृत्तो मन्त्रिधुरैरमात्यैः शास्त्रकोविदैः ॥ अयोध्या १००।१६

रघुनन्दन ! अच्छी नीति ही राजाओं की विजय का मूल कारण होती है । राजनीतिशास्त्र के जानकार योग्य मन्त्रियों द्वारा कोई नीति भली भांति गुप्त रखने पर ही यह नीति (मन्त्रणा) सफल होती है ।

३. **कच्चिन्मन्त्रयसे नैकः कच्चिन्न बहुभिः सह ।**
कच्चित् ते मन्त्रितो मन्त्रो राष्ट्रं न परिधावति ॥ अयो०१००।१८

क्या तुम गम्भीर और जटिल समस्याओं पर अकेले या अनेक मन्त्रियों के साथ विचार तो नहीं करते ? क्या तुम्हारी गुप्त मन्त्रणाओं की जानकारी शत्रु देशों को तो पता नहीं चल जाती ?

४. **कच्चित् सहस्त्रमूर्खाणामेकमिच्छसि पण्डितम् ।**
पण्डितो ह्यर्थकृच्छ्रेषु कुर्यान्निश्रेयसं महत् ॥ अयोध्या १००।२२

क्या तुम हजारों मूर्खों के बदले एक विद्वान् को अपने समीप रखते हो ? क्योंकि विद्वान् व्यक्ति आर्थिक कठिनाइयां दूर कर राजा और प्रजा का कल्याण कर सकता है ।

५. **सहस्त्राण्यपि मूर्खाणां यद्युपास्ते महीपतिः ।**
अथवाप्ययुतान्येव नास्ति तेषु सहायता ॥ अयोध्या १००।२३

यदि राजा एक हजार या दस हजार मूर्खों को भी नौकर रख ले, तो भी अवसर पड़ने पर ये सारे मूर्ख राजा की सहायता नहीं कर सकते।

६. **एकोऽप्यमात्यो मेधावी शूरो दक्षो विचक्षणः ।**
राजानं राजपुत्रं वा प्रापयेन्महतीं श्रियम् ॥ अयोध्या १००।२४

यदि राजा का एक मन्त्री भी बुद्धिमान्, शूरवीर, कार्यकुशल और नीतिज्ञ हो तो वह राजा या राजकुमार का अत्यधिक हित कर

सकता है ।

७. **अमात्यानुपधातीतान् पितृपैतामहाञ्शुचीन् ।**
श्रेष्ठाञ्श्रेष्ठेषु कच्चित् त्वं नियोजयसि कर्मसु ॥

अयोध्या १००।२६

क्या तुम ऐसे मन्त्रियों को महत्त्वपूर्ण कार्य सौंपते हो जो घूस न लेते हों, बेईमान न हों, तुम्हारे बाप दादों के समय से काम कर रहे हों और जिनकी योग्यता में कोई सन्देह न हो ?

८. **कच्चिन्नोग्रेण दण्डेन भृशमुद्वेजिताः प्रजाः ।**
राष्ट्रे तवावजानन्ति मन्त्रिणः कैकेयीसुत ॥ अयोध्या १००।२७

भरत ! क्या तुम्हारी प्रजा कठोर दण्ड से अत्यन्त दुःखी होकर तुम्हारे मन्त्रियों का अपमान तो नहीं करती ?

९. **न तावत् सदृशं नाम सचिवैरुपजीविभिः ।**
विप्रियं नृपतेर्वक्तुं निग्रहे प्रग्रहे प्रभोः ॥ युद्ध २९।७

राजा दण्ड दे सकता है और प्रसन्न होकर मनोकामना भी पूरी कर सकता है । इसलिए राजा के सहारे पेट पालने वाले मन्त्रियों को ऐसी कोई बात नहीं कहनी चाहिए जो राजा को बुरी लगे ।

१०. **सम्पृष्टेन तु वक्तव्यं सचिवेन विपश्चिता ।**
उद्यताञ्जलिना राज्ञो य इच्छेद् भूतिमात्मनः ॥ अरण्य ४०।९

अपनी कुशल चाहने वाले बुद्धिमान् मन्त्री को राजा के पूछने पर ही हाथ जोड़कर विनम्रता के साथ अपनी बात कहनी चाहिए ।

११. **नियुक्तैर्मन्त्रिभिर्वाच्यो ह्यवश्यं पार्थिवो हितम् ॥**

किष्किन्धा ३२।१८

नौकरी करने वाले मन्त्रियों को राजा के हित की सलाह अवश्य देनी चाहिए ।

१२. **परस्य वीर्यं स्वबलं च बुद्ध्वा,**
स्थानं क्षयं चैव तथैव वृद्धिम् ।

तथा स्वपक्षेऽप्यनुमृश्य बुद्ध्या,
वदेत् क्षमं स्वामिहितं स मन्त्री ॥ युद्ध १४।२२

शत्रु के और अपने सामर्थ्य को भलीभांति समझकर, दोनों पक्षों की स्थिति तथा अपने हानि-लाभ का विचार करके जो मन्त्री, स्वामी को हितकर और उचित सलाह देता है वही योग्य मन्त्री होता है ।

मनुष्य-स्वभाव

१. **अलङ्कृतमिवात्मानमादर्शतलसंस्थितम् ॥** अयोध्या ३।३८

सजा धजा पुरुष अपनी प्रतिमा दर्पण में देखकर बहुत प्रसन्न होता है ।

२. **सन्निकर्षाच्च सौहार्दं जायते स्थावरेष्विव ॥** अयोध्या ८।२८

पेड़ पौधों की तरह मनुष्यों के पास रहने से आपस में मैत्री हो जाती है । बेल और पेड़ भी यदि पास होते हैं तो वे एक दूसरे का आलिंगन करने लगते हैं ।

३. **सा हि वाक्येन कुब्जायाः किशोरीवोत्पथं गता ॥** अयो०९।३७

कुबड़ी दासी की बातों से बहक कर कैकेयी नादान किशोरावस्था की लड़की की तरह गलत रास्ते पर चलने लगी ।

४. **चला हि प्राणिनां मतिः ॥** अयोध्या ४।२०

प्राणियों की बुद्धि चंचल और अस्थिर होती है ।

५. **किं नु चित्तं मनुष्याणामनित्यमिति मे मतम् ।**
सतां च धर्मनिरतानां कृतशोभि च राघव ॥ अयोध्या ४।२७

मनुष्यों का मन प्रायः स्थिर नहीं रहता इसीलिए धर्मपरायण सज्जनों के मन भी कभी कभी राग द्वेष से भर जाते हैं ।

६. **ऋद्धियुक्ता हि पुरुषा न सहन्ते परस्तवम् ॥** अयोध्या २६।२५

समृद्धिशाली पुरुष अपने सामने दूसरे की स्तुति सहन नहीं कर पाते ।

७. **सदृशाच्चापकृष्टाच्च लोके कन्यापिता जनात् ।**
प्रधर्षणमवाप्नोति शक्रेणापि समो भुवि ॥ अयोध्या ११८।३५

इन्द्र के समान ऐश्वर्यशाली पुरुष को कन्या का पिता होने पर अपने समान या कम हैसियत के वर पक्ष के लोगों का अपमान सहना ही पड़ता है ।

८. **न पित्र्यमनुवर्तन्ते मातृकं द्विपदा इति ॥** अरण्य १६।३४

मनुष्य माता के गुणों पर चलते हैं पिता के नहीं ।

९. **विक्रान्ता बलवन्तो वा ये भवन्ति नरर्षभाः ।**
कथयन्ति न ते किञ्चित् तेजसा चातिगर्विताः ॥

अरण्य २९।१७

पराक्रमी और बलवान् श्रेष्ठ पुरुष अपने प्रताप या घमण्ड के कारण अपनी बड़ाई नहीं करते हैं ।

१०. **रिपूणां धर्षितं श्रुत्वा मर्षयन्ति न संयुगे ।**
जानन्तस्तु स्वकं वीर्यं स्त्रीसमक्षं विशेषतः ॥

किष्किन्धा १४।१८-१९

अपने पराक्रम को जानने वाले वीर पुरुष युद्ध के लिए शत्रु की ललकार स्त्रियों के सामने सुनकर कभी सहन नहीं करते ।

११. **अन्योन्यमुपकुर्वन्ति स्नेहकारुण्ययन्त्रिताः ॥** किष् ५६।११

दया और स्नेह के कारण सज्जन एक दूसरे की भलाई करते हैं।

१२. **न हि सामोपन्नानां प्रहर्ता विद्यते भुवि ॥** किष्किन्धा ५९।१६

विनयशील और मीठी बात करने वाले पर संसार में कोई प्रहार नहीं करता ।

१३. **न हि कर्मसु सज्जन्ते बुद्धिमन्तो भवद्विधाः ॥** किष् ५९।२८

आप जैसे बुद्धिमान् पुरुष कार्यसिद्धि में विलम्ब नहीं करते ।

१४. **दृश्यमाने भवेत् प्रीतिः सौहृदं नास्त्यदृश्यतः ॥** सुन्दर २६।४१

जो लोग आंखों के सामने रहते हैं उन्हीं से स्नेह बना रहता है। आंख से ओझल प्रियजनों के साथ मित्रता समाप्त हो जाती है ।

१५. ऐश्वर्यमदमत्तो हि सर्वोऽहमिति मन्यते ॥ सुन्दर ६४।१९

मनुष्य ऐश्वर्य के कारण मद से मस्त होकर अपने को सब से बड़ा मानने लगता है ।

१६. हृष्यन्ति व्यसनेष्वेते ज्ञातीनां ज्ञातयः सदा ॥ युद्ध १६।३

सगे सम्बन्धी अपने किसी रिश्तेदार को मुसीबत में पड़ा देखकर खुश होते हैं ।

१७. प्रधानं साधकं वैद्यं धर्मशीलं च राक्षस ।
ज्ञातयोऽप्यवमन्यते शूरं परिभवन्ति च ॥ युद्ध १६।४

ऐ राक्षस ! आयु में बड़ा होने के कारण राज्य पाकर सब से प्रमुख बने व्यक्ति को चाहे वह राजकार्य भलीभांति चला रहा हो, विद्वान्, धर्मात्मा और वीर भी क्यों न हो तब भी उसके सम्बन्धी उसका अपमान करते रहते हैं ।

१८. नित्यमन्योन्यसंहृष्टा व्यसनेष्वाततायिनः ।
प्रच्छन्नहृदया घोरा ज्ञातयस्तु भयावहाः ॥ युद्ध १६।५

सगे सम्बन्धी एक दूसरे का संकट देखकर खुश होते हैं । बड़े क्रूर होते हैं, अपने मन की बात नहीं बताते, वे बड़े भयंकर काम भी कर डालते हैं और उनका साथ सदा भय उत्पन्न करता रहता है ।

१९. नाग्निर्नान्यानि शस्त्राणि न नः पाशा भयावहाः ।
घोराः स्वार्थप्रयुक्तास्तु ज्ञातयो नो भयावहाः ॥ युद्ध १६।७

हमारे लिए आग, शस्त्रास्त्र और फंसाने वाले जाल इतने भयंकर नहीं होते जितने स्वार्थी और क्रूर सम्बन्धी खतरनाक होते हैं ।

२०. कृत्स्नाद् भयाज्ज्ञातिभयं कुकष्टं विहितं च नः ॥ युद्ध १६।८

सभी प्रकार के भयों की अपेक्षा हमें सम्बन्धियों से ही सब से अधिक कष्ट देने वाला भय लगता है ।

२१. **विद्यते गोषु सम्पन्नं विद्यते ज्ञातितो भयम् ।**
विद्यते स्त्रीषु चापल्यं विद्यते ब्राह्मणे तपः ॥ युद्ध १६।९

जैसे गौओं में यज्ञ के लिए घी दूध होता है, स्त्रियों में चंचलता और ब्राह्मणों में तप होता है वैसे ही सम्बन्धियों से भय लगा रहता है।

२२. **अशङ्कितमतिः स्वस्थो न शठः परिसर्पति ।**
न चास्य दुष्टवागस्ति तस्मान्मे नास्ति संशयः ॥ युद्ध १७।६३

दुष्ट पुरुष कभी भी निडर होकर और शान्त मन से सामने नहीं आ सकता । इस व्यक्ति की बातों से भी कुछ बुराई नहीं दीख रही है अतः इसके प्रति मेरे मन में सन्देह नहीं है ।

२३. **आकारश्छाद्यमानोऽपि न शक्यो विनिगूहितुम् ।**
बलाद्धि विवृणोत्येव भावमन्तर्गतं नृणाम् ॥ युद्ध १७।६४

कोई व्यक्ति कितना भी प्रयत्न क्यों न करे उसके मन के भाव चेहरे से पता चल जाते हैं । मनुष्य के हावभाव अपने मन की बात अवश्य प्रकट कर देते हैं ।

२४. **प्रशमश्च क्षमा चैव आर्जवं प्रियवादिता ।**
असामर्थ्यफला ह्येते निर्गुणेषु सतां गुणाः ॥ युद्ध २१।१४, १५

सज्जनों के शान्ति, क्षमा, सरलता और मधुर भाषण आदि गुणों को देखकर दुष्ट पुरुष सज्जनों को असमर्थ समझ बैठते हैं ।

२५. **आत्मप्रशंसिनं दुष्टं धृष्टं विपरिधावकम् ।**
सर्वत्रोत्सृष्टदण्डं च लोकः सत्कुरुते नरम् ॥ युद्ध २१।१५, १६

अपनी प्रशंसा करने वाले, दुष्ट, ढीठ, सब पर हमला करने वाले और सभी को कठोर दण्ड देने वाले व्यक्ति का संसार सम्मान करता है ।

मनोनिग्रह

१. **इन्द्रियाणां प्रदुष्टानां हयानामिव धावताम् ।**
कुर्वीत धृत्या सारथ्यं संहृत्येन्द्रियगोचरम् ॥

उत्तर ५९। प्रक्षिप्त २।२३

बेलगाम घोड़ों की भांति विषयभोगों की ओर दौड़ती हुई इन्द्रियों को धैर्यपूर्वक भोगों से हटाकर अपने वश में रखना चाहिए ।

२. **न तत् कुर्यादसिस्तीक्ष्णः सर्पो वा व्याहतः पदा ।**
अरिर्वा नित्यसंक्रुद्धो यथाऽऽत्मा दुरनुष्ठितः ॥

उत्तर ५९। प्रक्षिप्त २।२५

तेज धार वाली तलवार, पैर से कुचला गया सांप या सदा क्रोध में भरा रहने वाला शत्रु भी मनुष्य का उतना अहित नहीं कर सकता, जितना नियन्त्रण से बाहर रहने वाला मन अपना नुकसान कर बैठता है ।

३. **मनो हि हेतुः सर्वेषामिन्द्रियाणां प्रवर्तने ॥** सुन्दर ११।४२

हमारे शरीर की सभी इन्द्रियों को चलाने वाला मन ही है ।

माता, पिता, भाई

१. **पिता हि दैवतं तात देवतानामपि स्मृतम् ।**
तस्माद् दैवतमित्येव करिष्यामि पितुर्वचः ॥ अयोध्या ३४।५२

हे तात ! पिता को देवताओं का भी देवता माना जाता है, इसलिए मैं आपको देवता मान कर ही आप की आज्ञा का पालन करूंगा ।

२. **पितॄन् समनुजायन्ते नरा मातरमङ्गनाः ॥** अयोध्या ३५।२८

पुत्र, पिता के समान होते हैं और कन्याएं माता जैसी ।

३. **यन्मातापितरौ वृत्तं तनये कुरुतः सदा ।**
न सुप्रतिकरं तत् तु मात्रा पित्रा च यत्कृतम् ॥ अयोध्या १११।९

माता-पिता जीवनभर पुत्र के लिए जो उपकार करते रहते हैं उनका बदला आसानी से नहीं चुकाया जा सकता ।

४. **एष लोके सतां धर्मो यज्ज्येष्ठवशगो भवेत् ॥** अयोध्या ४०।६

संसार में सज्जनों का यही श्रेष्ठ आचरण होता है कि वे अपने से बड़े भाई और माता-पिता की आज्ञा का पालन करें ।

५. ज्येष्ठो भ्राता पिता वापि यश्च विद्यां प्रयच्छति ।
त्रयस्ते पितरो ज्ञेया धर्मे च पथिवर्तिनः ॥ किष्किन्धा १८।१३

बड़े भाई, पिता तथा विद्या देने वाले इन तीन व्यक्तियों को अपने पिता के समान मानना चाहिए । धर्म के पथ पर चलने वाले को यह नियम मानना चाहिए ।

६. पिता हि बन्धुः पुत्रस्य न माता हरिसत्तम ॥ किष्किन्धा २१।१५

हे वानरश्रेष्ठ हनुमान् ! पुत्र के वास्तविक बन्धु पिता और चाचा होते हैं न कि माता ।

७. देशे देशे कलत्राणि देशे देशे च बान्धवाः ।
तं तु देशं न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः ॥ युद्ध १०१।१५

प्रत्येक देश में और स्थान पर स्त्रियां तथा मित्र मिल सकते हैं किन्तु ऐसा कोई स्थान नहीं जहां सहोदर भाई मिल जाय ।

८. कन्यापितृत्वं दुःखं हि सर्वेषां मानकाङ्क्षिणाम् ।
न ज्ञायते च कः कन्यां वरयेदिति कन्यके ॥ उत्तर ९।९

बेटी ! अपना सम्मान बनाये रखने की इच्छा करने वाले पुरुष के लिए कन्या का पिता होना दुःखदायी होता है, क्योंकि वह नहीं जानता कि कैसा पुरुष उसकी कन्या से विवाह करेगा ।

९. मातुः कुलं पितृकुलं यत्र चैव च दीयते ।
कुलत्रयं सदा कन्या संशये स्थाप्य तिष्ठति ॥ उत्तर ९।१०

कन्या, मातृकुल (नाना-नानी, मामा-मामी) पितृकुल (पिता-माता, भाई आदि) तथा श्वसुर कुल इन तीनों को संशय में डाले रखती है।

महापुरुष

१. न हि स्त्रीषु महात्मानः क्वचित् कुर्वन्ति दारुणम् ॥

किष् ३३।३६

महापुरुष स्त्रियों के प्रति कभी भी कठोर व्यवहार नहीं करते ।

२. **धन्याः खलु महात्मानो मुनयः सत्यसम्मताः ।**
जितात्मनो महाभागा येषां न ते प्रियाप्रिये ॥ सुन्दर २६।४७

सत्य का आचरण करने वाले और जितेन्द्रिय महापुरुष, महात्मा और मुनि धन्य हैं जिनका कोई प्रिय या अप्रिय नहीं है ।

३. **प्रियान्न सम्भवेद् दुःखमप्रियादधिकं भवेत् ।**
ताभ्यां हि ते वियुज्यन्ते नमस्तेषां महात्मनाम् ॥ सुन्दर २६।४८

जिन महापुरुषों को प्रियजनों के बिछुड़ने से और अप्रिय पदार्थ प्राप्त होने पर कोई दुःख नहीं होता, ऐसे प्रिय और अप्रिय के प्रति उदासीन महात्मा वस्तुतः वन्दनीय हैं ।

४. **न तु सत्पुरुषा राजन् विलपन्ति यथा भवान् ॥** युद्ध ६९।२

हे राजन् ! सज्जन आपकी तरह विलाप नहीं करते हैं ।

५. **शुभं वा यदि वा पापं यो हि वाक्यमुदीरितम् ।**
सत्येन परिगृह्णाति स वीरः पुरुषोत्तमः ॥ किष्किन्धा ३०।७२

जो मनुष्य अपनी कही हुई भली या बुरी बात का पूरी तरह पालन करता है वह वीर पुरुष सर्वश्रेष्ठ माना जाता है ।

६. **सम्प्राप्तमवमानं यस्तेजसा न प्रमार्जति ।**
कस्तस्य पौरुषेणार्थो महताप्यल्पचेतसः ॥ उत्तर ११५।६

जो पुरुष अपने तेज और बल से अपमान का बदला नहीं चुका देता तो ऐसे मन्दबुद्धि व्यक्ति के महान् पुरुषार्थ से भी कोई लाभ नहीं होता ।

७. **कः पुमांस्तु कुले जातः स्त्रियं परगृहोषिताम् ।**
तेजस्वी पुनरादद्यात् सुहृल्लोभेन चेतसा ॥ उत्तर ११५।१९

कौन कुलीन और तेजस्वी पुरुष पराये घर में रही स्त्री को पुरानी मैत्री के कारण फिर कैसे ग्रहण कर सकता है ।

आप्तवचन

न मिथ्या ऋषिभाषितम् ॥ युद्ध ६०।११

ऋषियों की बात झूठी नहीं होती ।

मित्र

१. **उपकारफलं मित्रम् ॥** किष्किन्धा ५।२५

मित्र उपकार का फल देता है ।

२. **महात्मनां तु भूयिष्ठं त्वद्विधानां कृतात्मनाम् ।**
निश्चला भवति प्रीतिर्धैर्यमात्मवतां वर ॥ किष्किन्धा ८।६

आत्मज्ञानियों में श्रेष्ठ श्रीराम ! आप सदृश पुण्यात्मा और महात्माओं का स्नेह तथा धैर्य सदा बना रहता है और बढ़ता जाता है ।

३. **आढ्यो वा दरिद्रो वा दुःखितः सुखितोऽपि वा ।**
निर्दोषश्च सदोषश्च वयस्यः परमा गतिः ॥ किष्किन्धा ८।८

मित्र चाहे धनी हो या निर्धन, दुखी हो या सुखी, निर्दोष हो अथवा दोषपूर्ण वह मित्र का सब से बड़ा और अन्तिम आश्रय होता है ।

४. **धनत्यागः सुखत्यागो देशत्यागोऽपि वानघ ।**
वयस्यार्थे प्रवर्तन्ते स्नेहं दृष्ट्वा तथाविधम् ॥ किष्किन्धा ८।९

हे निष्पाप राम ! सज्जन अपने मित्र का अत्यधिक संच्चा स्नेह देखकर उसके लिए अपना धन, सुख और स्वदेश भी त्याग देते हैं ।

५. **रजतं वा सुवर्णं वा शुभान्याभरणानि च ।**
अविभक्तानि साधूनामवगच्छन्ति साधवः ॥ किष्किन्धा ८।७

उत्तम स्वभाव के मित्र अपने सोने चांदी और गहने आदि बहुमूल्य सम्पत्ति पर भी अच्छे मित्रों का समान अधिकार मानते हैं ।

६. **उपकारफलं मित्रमपकारोऽरिलक्षणम् ॥** किष्किन्धा ८।२१

मित्र उपकार करता है और शत्रु नुकसान पहुंचाता है ।

७. **दुःखितः सुखितो वापि सख्युर्नित्यं सखागतिः ॥** किष् ८।४

मित्र चाहे दुख में हो या सुख में वह सदा अपने मित्र का उपकार करता है ।

८. **वयस्यस्योपकर्तव्यं धर्ममेवानुपश्यता ॥** किष्किन्धा १८।२९

धर्माचरण करने वाले मनुष्य को मित्र का उपकार अवश्य करना चाहिए ।

९. **यो हि मित्रेषु कालज्ञः सततं साधु वर्तते ।**
तस्य राज्यं च कीर्तिश्च प्रतापश्चापि वर्धते ॥ किष् २९।१०,११

उचित अवसर को जानने वाला जो राजा अपने मित्रों के साथ सदा अच्छा व्यवहार करता है उसका राज्य, यश और तेजस्विता बढ़ती जाती है ।

१०. **संत्यज्य सर्वकर्माणि मित्रार्थे यो न वर्तते ।**
सम्भ्रमाद् विकृतोत्साहः सोऽनर्थेनावरुध्यते ॥ किष् २९।१३

जो व्यक्ति अपने सारे काम छोड़कर विशेष उत्साह के साथ मित्र के काम के लिए तुरन्त प्रयत्न नहीं करता उसको अनर्थ का मुंह देखना पड़ता है ।

११. **यो हि कालव्यतीतेषु मित्रकार्येषु वर्तते ।**
स कृत्वा महतोऽप्यर्थान्न मित्रार्थेन युज्यते ॥ किष्किन्धा २९।१४

जो पुरुष काम का उचित अवसर निकल जाने पर मित्र के कार्य में लगता है वह बड़े से बड़ा काम करके भी मित्र का उपकार नहीं कर पाता है ।

१२. **मित्रं स्वस्थानकुपितं जनयत्येव सम्भ्रमम् ॥** किष्किन्धा ३२।६

बिना किसी कारण क्रुद्ध हुआ मित्र घबराहट पैदा कर ही देता है ।

१३. **सर्वथा सुकरं मित्रं दुष्करं प्रतिपालनम् ।**
अनित्यत्वात् तु चित्तानां प्रीतिरल्पेऽपि भिद्यते ॥ किष् ३२।७

मित्रता करना तो सरल है किन्तु इसे निभाना बहुत कठिन होता है क्योंकि मन की स्थिति सदा बदलती रहती है अतः जरा सी बात पर भी मैत्री टूट जाती है ।

१४. धर्मलोपो महांस्तावत् कृते ह्यप्रतिकुर्वतः ।
अर्थलोपश्च मित्रस्य नाशे गुणवतो महान् ॥ किष् ३३।४७

मित्र के उपकार का बदला न चुकाने पर धर्म का नाश होता है, किन्तु गुणवान् मित्र से सम्बन्ध टूट जाने पर धन भी नष्ट हो जाता है।

१५. वसेत् सह सपत्नेन क्रुद्धेनाशीविषेण च ।
न तु मित्रप्रवादेन संवसेच्छत्रुसेविना ॥ युद्ध १६।२

अपने शत्रु और क्रोध में भरे जहरीले सांप के साथ भी रहा जा सकता है किन्तु शत्रु से मिले और मित्रता का दम्भ भरने वाले व्यक्ति के साथ कभी नहीं रहना चाहिए ।

१६. यथा पुष्करपत्रेषु पतितास्तोयबिन्दवः ।
न श्लेषमभिगच्छन्ति तथानार्येषु सौहृदम् ॥ युद्ध १६।११

जैसे कमल के पत्तों पर पड़ी पानी की बूंदें नहीं ठहरती हैं उसी प्रकार दुष्ट पुरुषों के हृदयों में मित्रता नहीं ठहर पाती है ।

१७. यथा शरदि मेघानां सिञ्चतामपि गर्जताम् ।
न भवत्यम्बुदसंक्लेदस्तथानार्येषु सौहृदम् ॥ युद्ध १६।१२

जैसे शरद् ऋतु में गरजते और बरसते बादलों से धरती गीली नहीं हो पाती उसी तरह दुष्ट पुरुषों के हृदयों में स्नेह की कोमलता नहीं होती ।

१८. यथा मधुकरस्तर्षाद् रसं विन्दन्न तिष्ठति ।
तथा त्वमपि तत्रैव तथानार्येषु सौहृदम् ॥ युद्ध १६।१३

जैसे भौंरा बड़ी चाह से फूलों का रसपान करता हुआ भी वहां नहीं रुकता है वैसे ही दुष्ट मित्रता नहीं रखते । तुम भी ऐसे ही दुष्ट हो ।

१९. यथा मधुकरस्तर्षात् काशपुष्पं पिबन्नपि ।
रसमत्र न विन्देत तथानार्येषु सौहृदम् ॥ युद्ध १६।१४

जैसे भ्रमर कास के फूल का रस पीने के लिए लालायित रहने पर भी रस नहीं पाता उसी तरह दुष्ट पुरुषों की मित्रता से लाभ नहीं होता ।

२०. यथा पूर्वं गजः स्नात्वा गृह्य हस्तेन वै रजः ।
दूषयत्यात्मनो देहं तथानार्येषु सौहृदम् ॥ युद्ध १६।१५

जिस प्रकार हाथी स्नान करने के बाद सूंड से धूल बिखेर कर अपना शरीर फिर गन्दा कर लेता है वैसे ही दुष्टों की मैत्री बुरी होती है ।

२१. सुहृदामर्थकृच्छ्रेषु युक्तं बुद्धिमता सदा ।
समर्थेनोपसंदेष्टुं शाश्वतीं भूतिमिच्छता ॥ युद्ध १७।३३

मित्रों की सदा उन्नति चाहने वाले बुद्धिमान् तथा समर्थ पुरुष को किसी भी तरह का संशय उत्पन्न होने पर अपनी सम्मति देनी चाहिए।

२२. मित्रभावेन सम्प्राप्तं न त्यजेयं कथञ्चन ।
दोषो यद्यपि तस्य स्यात् सतामेतदगर्हितम् ॥ युद्ध १८।३

जो व्यक्ति मेरे पास मित्रता करने की इच्छा से आया हो उसे मैं कभी नहीं छोड़ सकता चाहे उसमें कोई कमी भी हो । ऐसे पुरुष को अपनी शरण में लेना सज्जनों के लिए निन्दित नहीं माना जाता ।

२३. स सुहृद् यो विपन्नार्थं दीनमभ्युपपद्यते ॥ युद्ध ६३।२७

वही मित्र होता है जो काम बिगड़ जाने से कष्ट में पड़े अपने साथी को सहारा देता है ।

२४. स बन्धुर्योऽपनीतेषु साहाय्यायोपकल्पते ॥ युद्ध ६३।२८

वही बन्धु होता है जो कुमार्ग पर चलने से संकट में पड़े व्यक्ति की मदद करता है ।

२५. अवश्यं तु हितं वाच्यं सर्वावस्थं मया तव ॥ युद्ध ६३।३३

भाई के नाते मुझे हर हालत में आपके हित की ही बात कहनी चाहिए ।

२६. परस्वानां च हरणं परदाराभिमर्शनम् ।
सुहृदामतिशङ्का च त्रयो दोषाः क्षयावहाः ॥ युद्ध ८७।२३

परायी सम्पत्ति की चोरी, पराई स्त्री से समागम और अपने मित्रों पर बहुत अविश्वास करना ये तीनों दोष विनाशकारी होते हैं ।

२७. सौहृदाज्जायते मित्रमपकारोऽरिलक्षणम् ॥ युद्ध १२७।४७

स्नेह का व्यवहार करने से मित्रता होती है और अपकार करने से शत्रुता ।

२८. अविभक्ताश्च सर्वार्थाः सुहृदां नात्र संशयः ॥ उत्तर २३।१३

निःसन्देह मित्रों की सभी वस्तुएं एक दूसरे के समान उपयोग के लिए होती हैं ।

मृत्यु—काल

१. ध्रुवं ह्यकाले मरणं न विद्यते ॥ अयोध्या २०।५१

मौत की घड़ी आये बिना कोई नहीं मरता ।

२. यथाफलानां पक्वानां नान्यत्र पतनाद् भयम् ।
एवं नरस्य जातस्य नान्यत्र मरणाद् भयम् ॥ अयोध्या १०५।१७

जिस प्रकार पक्के फल को डाल से गिरने के सिवाय और कोई डर नहीं होता उसी प्रकार मनुष्य को मृत्यु के अतिरिक्त और कोई डर नहीं सताता ।

३. यथाऽऽगारं दृढस्थूणं जीर्णं भूत्वोपसीदति ।
तथावसीदन्ति नरा जरामृत्युवशंगताः ॥ अयोध्या १०५।१८

जैसे मजबूत खम्भों पर बना मकान पुराना होने पर गिर जाता है वैसे ही बुढ़ापे और मृत्यु के अधीन होकर मनुष्य मर जाता है ।

४. सहैव मृत्युर्व्रजति सह मृत्युर्निषीदति ।
गत्वा सुदीर्घमध्वानं सहमृत्युर्निवर्तते ॥ अयोध्या १०५।२२

मृत्यु हमारे साथ ही चलती है और साथ ही बैठती है । लम्बी यात्रा में भी वह हमारे साथ रहती है और हमारे साथ ही मृत्यु लौट आती है ।

५. गात्रेषु वलयः प्राप्ताः श्वेताश्चैव शिरोरुहाः ।
जरया पुरुषो जीर्णः किं हि कृत्वा प्रभावयेत् ॥ अयो०१०५।२३

शरीर में झुर्रियां पड़ गई हैं, सिर के बाल सफेद हो गये हैं, ऐसे बुढ़ापे से जीर्ण-शीर्ण शरीर वाला किस उपाय से मृत्यु टाल सकता है।

६. नन्दन्त्युदित आदित्ये नन्दन्त्यस्तमितेऽहनि ।
आत्मनो नावबुध्यन्ते मनुष्या जीवितक्षयम् ॥ अयोध्या १०५।२४

मनुष्य सूर्योदय होने पर प्रसन्न होते हैं और सूर्यास्त होने पर भी प्रसन्न होते हैं किन्तु वे यह नहीं समझते कि प्रतिदिन हमारी आयु घटती जा रही है ।

७. हृष्यन्त्यृतुमुखं दृष्ट्वा नवं नवमिवागतम् ।
ऋतूनां परिवर्तेन प्राणिनां प्राणसंक्षयः ॥ अयोध्या १०५।२५

मनुष्य नयी नयी ऋतुओं का आगमन देखकर प्रसन्न होते हैं किन्तु यह नहीं समझते कि ऋतुपरिवर्तन के साथ-साथ हमारी आयु भी घटती जा रही है ।

८. यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महार्णवे ।
समेत्य तु व्यपेयातां कालमासाद्य कञ्चन ॥ अयोध्या १०५।२६
एवं भार्याश्च पुत्राश्च ज्ञातयश्च वसूनि च ।
समेत्य व्यवधावन्ति ध्रुवो ह्येषां विना भवः ॥ अयोध्या १०५।२७

महासागर में बहते हुए लकड़ी के दो टुकड़े कभी एक दूसरे से मिल जाते हैं और कुछ समय तक साथ तैरते रह कर अलग हो जाते हैं । इसी प्रकार इस संसार में स्त्री, पुत्र, सम्बन्धी और धन-धान्य मनुष्य

को कुछ समय तक मिलते हैं, क्योंकि इन सब का बिछुड़ जाना अवश्यम्भावी है ।

९. **नात्र कश्चिद् यथाभावं प्राणी समतिवर्तते ।**
तेन तस्मिन् न सामर्थ्यं प्रेतस्यास्त्यनुशोचतः ॥ अयो० १०५।२८

इस संसार में कोई भी प्राणी निश्चित समय पर होने वाली मृत्यु को नहीं टाल सकता । इसी प्रकार मरे हुए व्यक्ति के लिए शोक करने वाला भी अपनी मृत्यु को नहीं टाल सकता ।

१०. **यथा हि सार्थं गच्छन्तं ब्रूयात् कश्चित् पथि स्थितः।**
अहमप्यागमिष्यामि पृष्ठतो भवतामिति ॥ अयोध्या १०५।२९
एवं पूर्वैर्गतो मार्गः पैतृपितामहैर्ध्रुवः ।
तमापन्नः कथं शोचेद् यस्य नास्ति व्यतिक्रमः ॥
अयोध्या १०५।३०

जैसे रास्ते में खड़ा यात्री सामने गुजरते हुए काफिले से कहता है कि मैं भी पीछे पीछे आ रहा हूं, उसी प्रकार हमारे पूर्वज पिता-पितामह जिस रास्ते से गये हैं उसी से हमें भी जाना पड़ेगा । इससे बचा नहीं जा सकता इसलिए मनुष्य को शोक नहीं करना चाहिए ।

११. **नात्मनः कामकारो हि पुरुषोऽयमनीश्वरः ।**
इतश्चेतरश्चैनं कृतान्तः परिकर्षति ॥ अयोध्या १०५।१५

मनुष्य अपनी इच्छा के अनुसार आचरण नहीं कर सकता क्योंकि वह पूरी तरह समर्थ नहीं है । इसीलिए यमराज पुरुष को यहां-वहां खींचता रहता है ।

१२. **अन्तकाले हि भूतानि मुह्यन्तीति पुराश्रुतिः ॥** अयोध्या १०६।१३

पुरानी कहावत है कि अन्तकाल आने पर प्राणियों की बुद्धि नष्ट हो जाती है ।

१३. **कः कस्य पुरुषो बन्धुः किमाप्यं कस्य केनचित् ।**
एको हि जायते जन्तुरेक एव विनश्यति ॥ अयोध्या १०८।३

इस संसार में न तो कोई किसी का बन्धु-बान्धव है और न ही किसी को किसी से कुछ लेना-देना है । जीव अकेला ही जन्म लेता है और अकेला ही नष्ट हो जाता है ।

१४. न त्वेवानागते काले देहाच्च्यवति जीवितम् ॥ अयोध्या ३९।५

अन्तकाल आये बिना शरीर से प्राण नहीं निकलते ।

१५. उद्यतानां हि युद्धार्थं येषां भवति लक्ष्मण ।
निष्प्रभं वदनं तेषां भवत्यायुः परिक्षयः ॥ अरण्य २४।९

युद्ध के लिए तैयार हो जाने पर जिनके चेहरे फीके पड़ जाते हैं उनकी आयु नष्ट हो जाती है ।

१६. कालपाशपरिक्षिप्ता भवन्ति पुरुषा हि ये ।
कार्याकार्यं न जानन्ति ते निरस्तषडिन्द्रियाः ॥ अरण्य ३०।१५

मृत्यु के फन्दे में फंस जाने पर पुरुष की छहों इन्द्रियां बेकार हो जाती हैं इसलिए उसे क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए इस बात का ज्ञान नहीं रहता ।

१७. कालो हि दुरतिक्रमः ॥ अरण्य ६८।२१, ७२।१६

मृत्यु काल का उल्लंघन नहीं किया जा सकता ।

१८. कालस्य सुमहद् वीर्यं सर्वभूतेषु लक्ष्मण ॥ अरण्य ६९।४८

काल का अत्यधिक बल सभी प्राणियों को अपने वश में कर लेता है ।

१९. शूराश्च बलवन्तश्च कृतास्त्राश्च रणाजिरे ॥ युद्ध १६।२४
कालाभिपन्नाः सीदन्ति यथा बालुकसेतवः ॥ अरण्य ६९।५०

शूर-वीर, बलशाली और अस्त्रशस्त्रवेत्ता योद्धा भी युद्ध में कालपाश में पड़कर रेत के बने पुल की तरह नष्ट हो जाते हैं ।

२०. भवितव्यं हि तच्चापि न तच्छक्यमिहान्यथाकर्त्तुम् ॥
अरण्य ७२।१६

होनहार को कोई नहीं बदल सकता ।

२१. काममेवंविधो लोकः कालेन विनियुज्यते ॥ किष् १७।५३

यह जगत् कभी न कभी काल के अधीन होता ही है क्योंकि इसका यही स्वभाव है ।

२२. कश्च कस्यानुशोच्योऽस्ति देहेऽस्मिन् बुदबुदोपमे ॥

किष् २१।३

बुलबुले के समान इस क्षणभंगुर शरीर में रहकर कौन व्यक्ति किसके लिए शोक कर सकता है ।

२३. जानास्यनियतामेवं भूतानामागतिं गतिम् ॥ किष्किन्धा २१।५

तुम्हें मालूम ही है कि प्राणियों के जीवन और मृत्यु का कोई निश्चित समय नहीं है ।

२४. अकाले दुर्लभो मृत्युः स्त्रिया वा पुरुषस्य वा ॥ सुन्दर २५।१२

किसी भी नर-नारी की मृत्यु समय आये बिना नहीं होती ।

२५. ऐश्वर्ये वा सुविस्तीर्णे व्यसने वा सुदारुणे ।
रज्ज्वे पुरुषं बद्ध्वा कृतान्तः परिकर्षति ॥ सुन्दर ३७।३

अत्यधिक ऐश्वर्यशाली पुरुष को और घोर विपत्तियों में भी पड़े मनुष्य को काल इस तरह खींच लेता है मानो मनुष्य रस्सी में बंधा हो।

२६. सुनीतं हितकामेन वाक्यमुक्तं दशानन ।
न गृह्णन्त्यकृतात्मानः कालस्य वशमागताः ॥ युद्ध १६।२०

रावण ! भला करने की इच्छा से कहे गये नीतियुक्त वचन भी मृत्युपाश में पड़े कृतघ्न पुरुषों की समझ में नहीं आते ।

२७. परान्तकाले हि गतायुषो नरा ।
हितं न गृह्णन्ति सुहृद्भिरीरितम् ॥ युद्ध १६।२६

आयु समाप्त हो जाने पर कालपाश में बंधे पुरुष मित्रों की हितकारी बात पर भी ध्यान नहीं देते हैं ।

२८. एको हि कुरुते पापं कालपाशवशं गतः ।
नीचेनात्मापचारेण कुलं तेन विनश्यति ॥ युद्ध ३८।७

मृत्यु के फन्दे में फंसा मनुष्य अकेले ही पाप करता है, किन्तु उस नीच पुरुष के पाप से सारा कुल ही नष्ट हो जाता है ।

२९. न कालस्यातिभारोऽस्ति कृतान्तश्च सुदुर्जयः ॥ युद्ध ४८।१९

काल के लिए कुछ भी कठिन नहीं है । यमराज को कोई नहीं जीत सकता ।

३०. प्रायेण गतसत्त्वानां पुरुषाणां गतायुषाम् ।
दृश्यमानेषु वक्त्रेषु परं भवति वैकृतम् ॥ युद्ध ४८।३२

जिन मनुष्यों के प्राण निकल जाते हैं या जिनकी आयु समाप्त हो जाती है उनके चेहरे प्रायः बिगड़ जाते हैं ।

३१. न चातिक्रमितुं शक्यं दैवं सुग्रीव मानुषैः ॥ युद्ध ४९।२८

सुग्रीव ! मनुष्य काल या भाग्य के विधान को पलट नहीं सकता।

३२. सर्वदा सर्वभूतानां मृत्युरलक्षणः ॥ युद्ध १११।२९

किसी भी प्राणी की मृत्यु बिना किसी कारण कभी नहीं होती।

३३. नास्ति सर्वामरत्वं हि कस्यचित् प्राणिनो भुवि ॥ उत्तर ३०।९

इस पृथ्वी पर कोई भी प्राणी सदा अमर नहीं रह सकता ।

३४. पूर्वनिर्माणबद्धा हि कालस्य गतिरीदृशी ॥ उत्तर १०६।२

पूर्वजन्म के कर्मों के अनुसार नियत काल की गति ऐसी ही होती है ।

३५. अहोरात्राणि गच्छन्ति सर्वेषां प्राणिनामिह ।
आयूंषि क्षपयन्त्याशु ग्रीष्मे जलमिवांशवः ॥ अयोध्या १०५।२०

इस संसार में सभी प्राणियों की आयु दिन-रात बीतने के साथ उसी तरह तेजी से घटती जा रही है जैसे सूर्य की किरणें गर्मियों में

पानी को एकदम सोख लेती हैं ।

३६. आत्मानमनुशोच त्वं किमन्यमनुशोचति ।
आयुस्तु हीयते यस्य स्थितस्यास्य गतस्य च ॥ अयो०१०५।२१

तुम्हें अपनी ही चिन्ता करनी चाहिए दूसरों के लिए शोक क्यों करते हो, क्योंकि कोई प्राणी चाहे इस संसार में हो या कहीं और चला गया हो, सभी प्राणियों की आयु लगातार घटती जाती है ।

३७. काले कालगृहीतानां नक्षत्रं ग्रहपीडितम् ॥ युद्ध ४।५२

काल के मृत्यु पाश में बंधे लोगों का नक्षत्र समय पर ग्रहों से पीड़ित होता है ।

३८. भगवन् प्राणिनां नित्यं नान्यत्र मरणाद् भयम् ।
नास्ति मृत्युसमः शत्रुरमरत्वमहं वृणे ॥ उत्तर १०।१६

हे भगवन् ! प्राणियों को मृत्यु से सब से अधिक डर लगा रहता है, मृत्यु के समान उनका और कोई शत्रु नहीं अतः आप मुझे अमर होने का वर दीजिये ।

य

युद्ध

१. अनवस्थौ हि दृश्येते युद्धे जयपराजयौ ॥ सुन्दर ३७।५५

युद्ध में हार या जीत निश्चित नहीं होती ।

२. आत्मा रक्ष्यः प्रयत्नेन युद्धसिद्धिर्हि चञ्चला ॥ सुन्दर ४६।१७

युद्ध में सफलता अनिश्चित होती है अतः मनुष्य को अपनी रक्षा करनी चाहिए ।

३. अवश्यं खलु संख्यानं कर्तव्यं युद्धमिच्छता ॥ युद्ध ३०।१८

युद्ध करने वाले को अपनी तथा शत्रु की सेना आदि की जानकारी

अवश्य लेनी चाहिए ।

४. **न हि कोपपरीतानि हर्षपर्युत्सुकानि च ।**
भवन्ति युधि योधानां मुखानि निहते पतौ ॥ युद्ध ४८।२४

युद्ध में अपने स्वामी के मारे जाने पर सैनिकों के मुख पर क्रोध और प्रसन्नता नहीं दिखाई पड़ती है ।

५. **हतवीरप्रधाना हि गतोत्साहा निरुद्यमा ।**
सेना भ्रमति संख्येषु हतकर्णेव नौर्जले ॥ युद्ध ४८।२६

युद्ध में वीर प्रधान सेनापति के मारे जाने पर सेना उत्साहहीन और उपायहीन होकर उसी तरह मारी मारी फिरती है जैसे मल्लाह (कर्ण-धार) के मारे जाने पर पानी में नाव ।

६. **बभूवुर्बलवन्तो हि बलवन्तमुपाश्रिताः ॥** युद्ध ५६।१०

बलवान् का साथ पाकर वे सब स्वयं भी बलवान् बन गये ।

७. **नावज्ञा रिपवे कार्या ॥** युद्ध ५९।४

शत्रु को छोटा या निर्बल समझकर उसकी अनदेखी नहीं करनी चाहिए ।

८. **अयुध्यमानं प्रच्छन्नं प्राञ्जलिं शरणागतम् ।**
पलायमानं मत्तं वा न हन्तुं त्वमिहार्हसि ॥ युद्ध ८०।३९

युद्ध न करने वाले, छिपे हुए, हाथ जोड़ कर शरण में आये हुए, भाग जाने वाले या पागल व्यक्ति को तुम्हें नहीं मारना चाहिए ।

९. **शूरैरभिजनोपेतैरयुक्तं हि निवर्तितुम् ॥** युद्ध ८२।४

उत्तम कुल में उत्पन्न वीरों के लिए युद्ध में पीठ दिखाकर नहीं भागना चाहिए ।

१०. **नैकान्तविजयो युद्धे भूतपूर्वः कदाचन ।**
परैर्वा हन्यते वीरः परान् वा हन्ति संयुगे ॥ युद्ध १०९।१७

पहले भी ऐसा कभी नहीं हुआ कि युद्ध में किसी की सदा जीत

ही हो । युद्ध में वीर पुरुष या तो शत्रु के हाथ मारा जाता है अथवा वह अपने शत्रु को मार गिराता है ।

११. क्षत्रियो निहतः संख्ये न शोच्य इति निश्चयः ॥ युद्ध १०९।१८

युद्ध में वीरगति को प्राप्त क्षत्रिय के लिए आंसू बहाना उचित नहीं होता ।

१२. स्वयमेवागतः शत्रुर्न मोक्तव्यः कृतात्मना ।
यो हि विक्लवया बुद्ध्या प्रसरं शत्रवे दिशेत् ।
स हतो मन्दबुद्धिः स्याद् यथा कापुरुषस्तथा ॥ उत्तर ६८।१९

बुद्धिमान् व्यक्ति को सामने आये हुए शत्रु को कभी नहीं छोड़ना चाहिए । जो घबराहट के कारण अपने शत्रु को भाग जाने देता है वह मूर्ख कायर की तरह मारा जाता है ।

१३. असत्यानि च युद्धानि संशयो मे न रोचते ।
कश्च निःसंशयं कार्यं कुर्यात् प्राज्ञः ससंशयम् ॥ सुन्दर ३०।३५

युद्ध में किस की जीत होगी इसका निश्चय नहीं होता अतः मुझे संशयात्मक काम करना अच्छा नहीं लगता । कौन बुद्धिमान् पुरुष संशयरहित कार्य को संदिग्ध बनाना चाहेगा ।

र

राजधर्म

१. पौरा ह्यात्मकृताद् दुःखाद् विप्रमोच्या नृपात्मजैः ।
न तु खल्वात्मना योज्या दुःखेन पुरवासिनः ॥ अयोध्या ४६।२३

राजकुमारों का कर्त्तव्य है कि वे नगरवासियों को अपने कारण हुई असुविधाओं से छुटकारा दिलायें न कि प्रजा को अपने दुःख देकर और दुखी बनायें ।

२. अप्यज्येष्ठा हि राजानो राजधर्ममनुस्मर ॥ अयोध्या ५८।२०

राजा छोटी आयु का भी हो तो भी वह आदरणीय होता है–यह राजधर्म है ।

३. **यत्नतः परिहर्तव्या विषयेषु तपस्विनः ॥** अयोध्या ९१।७

राजाओं को सदा यही प्रयत्न करना चाहिए कि वे तपस्वियों से दूर रहें ।

४. **अधर्मः सुमहान् नाथ भवेत् तस्य तु भूपतेः ।**
यो हरेद् बलिषड्भागं न च रक्षति पुत्रवत् ॥ अरण्य ६।११

जो राजा प्रजा से उसकी आय का छठा भाग लेकर अपने पुत्र की तरह प्रजा की रक्षा नहीं करता वह बहुत अधर्म का काम करता है ।

५. **कच्चिन्निद्रावशं नैषि कच्चित् कालेऽवबुध्यते ।**
कच्चिचापररात्रेषु चिन्तयस्यर्थनैपुणम् ॥ अयोध्या १००।१७

भरत ! क्या तुम समय से पहिले ही सो तो नहीं जाते ? ठीक समय पर जाग जाते हो न ? रात के पिछले पहर में अर्थप्राप्ति के उपायों पर विचार करते हो न ?

६. **कच्चिदर्थं विनिश्चित्य लघुमूलं महोदयम् ।**
क्षिप्रमारभसे कर्म न दीर्घयसि राघव ॥ अयोध्या १००।१९

रघुनन्दन ! छोटे से साधन से शुरू होने वाले किन्तु महत्त्वपूर्ण परिणाम वाले किसी काम को जल्दी ही प्रारम्भ कर देते हो न ? देर तो नहीं लगाते ?

७. **कच्चित् त्वां नावजानन्ति याजकाः पतितं यथा ।**
उग्रप्रतिग्रहीतारं कामयानमिव स्त्रियः ॥ अयोध्या १००।२८

क्या अन्यायपूर्वक अधिक कर वसूल करने के कारण प्रजा तुम्हारा उसी तरह अपमान तो नहीं करती जैसे याजक, पतित यजमान की दक्षिणा नहीं लेते और स्त्रियां कामुक पुरुषों की बातों में नहीं आतीं ।

८. **कच्चित् स्त्रियः सान्त्वयसे कच्चित् तास्ते सुरक्षिताः ।**
कच्चिन्न श्रद्दधास्यासां कच्चिद् गुह्यं न भाषसे ॥

अयोध्या १००।४९

क्या तुम अन्त:पुर की स्त्रियों को सन्तुष्ट और सुरक्षित रखते हो? क्या तुम स्त्रियों पर विश्वास करके उन्हें गुप्त बातें तो नहीं बता देते?

९. **रक्ष्या हि राज्ञां धर्मेण सर्वे विषयवासिनः ॥** अयोध्या १००।४८

राजा को अपने राज्य में रहने वाले सभी लोगों की रक्षा करनी चाहिए ।

१०. **कच्चिन्न सर्वे कर्मान्ताः प्रत्यक्षास्तेऽविशंकया ।**
सर्वे वा पुनरुत्सृष्टा मध्यमेवात्र कारणम् ॥ अयोध्या १००।५२

क्या सभी राजकर्मचारी निडर होकर तुम्हारे सामने तो नहीं घूमते फिरते ? अथवा वे तुम से दूर ही रहना चाहते हैं ? राजा को मध्य मार्ग ही अपनाना चाहिए । उसे राजकर्मियों को अपने बहुत पास व बहुत दूर भी नहीं रखना चाहिए ।

११. **आयस्ते विपुलः कच्चित् कच्चिदल्पतरो व्ययः ।**
अपात्रेषु न ते कच्चित् कोषो गच्छति राघव ॥

अयोध्या १००।५४

रघुनन्दन ! तुम्हारी आय पर्याप्त है न ? और खर्च कम ही है न? राज्य का पैसा गलत लोगों के हाथ में तो नहीं जाता ?

१२. **कच्चिदार्योऽपि शुद्धात्मा क्षारितश्चापकर्मणा ।**
अदृष्टः शास्त्रकुशलैर्न लोभाद् वध्यते शुचिः ॥

अयोध्या १००।५६

कहीं किसी श्रेष्ठ निर्दोष और शुद्ध आचरण वाले व्यक्ति पर झूठा दोष लगा देने पर सम्बद्ध विषय के विद्वानों द्वारा झूठे-सच्चे आरोप पर विचार किये बिना धन के लोभ से निर्दोष व्यक्ति दण्डित तो नहीं होता?

१३. **गृहीतश्चैव पृष्टश्च काले दृष्टः सकारणः ।**
कच्चिन्न मुच्यते चोरो धनलोभान्नरर्षभ ॥ अयोध्या १००।५७

नरश्रेष्ठ ! कहीं चोरी करते हुए पकड़े गये, चोरी करते हुए देखे गये और चोरी के बारे में पूछताछ कर लेने पर तथा चोरी का माल बरामद हो जाने पर भी चोर को रिश्वत लेकर छोड़ तो नहीं दिया जाता?

१४. व्यसने कच्चिदाढ्यस्य दुर्बलस्य च राघव ।
अर्थं विरागाः पश्यन्ति तवामात्या बहुश्रुताः ॥ अयो० १००।५८

क्या धनी और निर्धन पुरुष के बीच झगड़े का फैसला तुम्हारे योग्य मन्त्री पैसे के लोभ के बिना करते हैं ?

१५. यानि मिथ्याभिशस्तानां पतन्त्यश्रूणि राघव ।
तानि पुत्रपशून् घ्नन्ति प्रीत्यर्थमनुशासतः ॥ अयोध्या १००।५९

रघुनन्दन ! निरपराध लोगों पर झूठे आरोप लगाकर दण्ड देने से निरपराध पुरुषों की आंखों से बहे आंसू पक्षपातपूर्ण शासन करने वाले की सन्तान और सम्पत्ति को नष्ट कर देते हैं ।

१६. *राजा के १४ अवगुण-*

नास्तिक्यमनृतं क्रोधं प्रमादं दीर्घसूत्रताम् ।
अदर्शनं ज्ञानवतामालस्यं पञ्चवृत्तिताम् ॥ अयोध्या १००।६५

ईश्वर में अविश्वास, झूठ बोलना, क्रोध, आलस्य, समय पर काम न करना और काम लटकाये रखना, विद्वानों के साथ विचार-विनिमय न करना, अपनी आंख, कान आदि पांचों ज्ञान-इन्द्रियों के वश में रहना अर्थात् जितेन्द्रिय न होना ।

१७. एकचिन्तनमर्थानामनर्थज्ञैश्च मन्त्रणम् ।
निश्चितानामनारम्भं मन्त्रस्यापरिरक्षणम् ॥ अयोध्या १००।६६

समस्याओं पर अकेले ही विचार करना, मूर्खों से सलाह करना, निश्चित किये हुए कामों को शुरू न करना और गुप्त बातों को बता देना।

१८. मंगलाद्यप्रयोगं च प्रत्युत्थानं च सर्वतः ।
कच्चित् त्वं वर्जयस्येतान् राजदोषांश्चतुर्दश ॥

अयोध्या १००।६७

मांगलिक कार्य न करना और सभी शत्रुओं पर एक साथ चढ़ाई कर देना । क्या तुम इन चौदह राजदोषों से अलग रहते हो ?

१९. कच्चित् स्वादुकृतं भोज्यमेको नाश्नासि राघव ।
कच्चिदाशंसमानेभ्यो मित्रेभ्यः सम्प्रयच्छसि ॥

अयोध्या १००।७५

रघुनन्दन ! क्या स्वादिष्ट भोजन अकेले तो नहीं कर लेते हो ? स्वादिष्ट भोजन की आशा रखने वाले मित्रों के साथ बांटकर खाते हो न ?

२०. राजा तु धर्मेण हि पालयित्वा महीपतिर्दण्डधरः प्रजानाम् ।
अवाप्य कृत्स्नां वसुधां यथावदितश्च्युतः स्वर्गमुपैति विद्वान् ॥

अयोध्या १००।७६

अपने अधिकारों का धर्मानुसार उपयोग कर प्रजा का पालन करने वाला राजा सारी पृथ्वी को अपने अधिकार में कर लेता है और देहत्याग करने के बाद स्वर्गलोक में जाता है ।

२१. उपायकुशलं वैद्यं भृत्यसन्दूषणे रतम् ।
शूरमैश्वर्यकामं च यो हन्ति न स हन्यते ॥ अयोध्या १००।२९

जो राजा साम, दाम, आदि राजनीति के दांव पेंच जानने वाले, विश्वासपात्र राजकर्मचारियों को फोड़ लेने वाले, वीर और राज्य हड़पना चाहने वाले व्यक्ति को नहीं मार डालता है तो राजा को ऐसा व्यक्ति मार डालता है ।

२२. वार्तायां संश्रितस्तात लोकोऽयं सुखमेधते ॥ अयोध्या १००।४७

कृषि और व्यापार-वाणिज्य में लगी रहने वाली प्रजा से राष्ट्र उन्नति करता है ।

सेनापति के गुण—

२३. कच्चिद् धृष्टश्च शूरश्च धृतिमान् मतिमाञ्छुचिः ।
कुलीनश्चानुरक्तश्च दक्षः सेनापतिः कृतः ॥ अयोध्या१००।३०

क्या तुम ने अपने वश में रहने वाला, शूरवीर. धैर्यवान्, बुद्धिमान्, चरित्रवान्, कुलीन, अनुभवी, कार्यकुशल और जान न्यौछावर कर देने वाला सेनापति नियुक्त किया है ।

२४. बलवन्तश्च कच्चित् ते मुख्या युद्धविशारदाः ।
दृष्टापदाना विक्रान्तास्त्वया सत्कृत्य मानिताः ॥ अयोध्या१००।३१

क्या तुम्हारे मुख्य योद्धा बलवान् और पराक्रमी हैं ? क्या तुम ने उनके शौर्य की परीक्षा की है ? क्या तुम ऐसे योद्धाओं का उचित सत्कार करते हो ?

२५. कालातिक्रमणे ह्येव भक्तवेतनयोर्भृताः ।
भर्तुरप्यतिकुप्यन्ति सोऽनर्थः सुमहान् कृतः ॥ अयोध्या१००।३३

यदि कर्मचारियों को वेतन और भत्ते समय पर नहीं दिये जाते तो वे अपने स्वामी से बहुत नाराज हो जाते हैं और अनर्थ कर डालते हैं।

राजदूत—

२६. कच्चिज्जानपदो विद्वान् दक्षिणः प्रतिभानवान् ।
यथोक्तवादी दूतस्ते कृतो भरत पण्डितः ॥ अयोध्या १००।३५

क्या तुम ने ऐसे पुरुष को राजदूत नियुक्त किया है जो अपने ही देश का निवासी है, विद्वान्, व्यवहारकुशल, प्रतिभाशाली, भले बुरे की पहिचान करने में समर्थ और राजा का अभिप्राय ठीक प्रकट करने वाला है ?

२७. उग्रत्वं राजधर्माणां कथं देवि न बुध्यसे ॥ अयोध्या ७।२३

महारानी ! आप क्यों नहीं समझतीं कि राजनीति में उग्रव्यवहार करने होते हैं ।

२८. क्षत्रियैर्धार्यते चापो नार्तशब्दो भवेदिति ॥ अरण्य १०।३

क्षत्रिय इसीलिए अपने पास धनुष रखते हैं जिससे कोई दुखी होकर न रोये ।

२९. उद्वेजनीयो भूतानां नृशंसः पापकर्मकृत् ।
त्रयाणामपि लोकानामीश्वरोऽपि न तिष्ठति ॥ अरण्य २९।३

प्राणियों को सताने वाला, क्रूर और पापी तीनों लोकों का राजा भी नष्ट हो जाता है ।

३०. कर्म लोकविरुद्धं तु कुर्वाणं क्षणदाचर ।
तीक्ष्णं सर्वजनो हन्ति सर्पं दुष्टमिवागतम् ॥ अरण्य २९।४

ऐ राक्षस ! जो राजा प्रजा के हितों के विपरीत क्रूरतापूर्ण कार्य करता है उसे लोग सामने आये हुए भयंकर सांप की तरह मार डालते हैं ।

३१. वाक्यमप्रतिकूलं तु मृदुपूर्वं शुभं हितम् ।
उपचारेण वक्तव्यो युक्तं च वसुधाधिपः ॥ अरण्य ४०।१०

राजा के सामने अवसर के अनुकूल, हितकारी अपनी बात बड़े आदर के साथ मधुर वाणी से कहनी चाहिए ।

३२. सावमर्दं तु यद्वाक्यमथवा हितमुच्यते ।
नाभिनन्देत तद् राजा मानार्थी मानवर्जितम् ॥ अरण्य ४०।११

राजा की बात काटकर आक्षेपपूर्ण भाषा में यदि हितकारी सलाह भी दी जाती है तो राजा ऐसी अपमान भरी बात को नहीं मानता है क्योंकि राजा सम्मान के भूखे होते हैं ।

३३. तस्मात् सर्वास्ववस्थासु मान्याः पूज्याश्च नित्यदा ॥

अरण्य ४०।१४

इसलिए हर हालत में राजाओं का सम्मान और सत्कार सदा करना चाहिए ।

३४. राज्ञो विप्रतिकूलस्थो न जातु सुखमेधते ॥ अरण्य ४०।२६

राजा के प्रतिकूल आचरण करने वाला पुरुष कभी चैन से नहीं रह सकता ।

३५. स्वामिना प्रतिकूलेन प्रजास्तीक्ष्णेन रावण ।
रक्ष्यमाणा न वर्धन्ते मेषा गोमायुना यथा ॥ अरण्य ४१।१४

अरे रावण ! प्रजा की इच्छा के विपरीत आचरण करने वाले और कठोर स्वभाव वाले राजा के राज्य में प्रजा उसी तरह फलती-फूलती नहीं है जैसे भेड़िये की देखरेख में रहने वाली भेड़ें ।

३६. अरयश्च मनुष्येण विज्ञेयाश्छद्मचारिणः ।
विश्वस्तानामविश्वस्ताश्छिद्रेषु प्रहरन्त्यपि ॥ किष्किन्धा २।२२

प्रत्येक व्यक्ति को अपना असली रूप छिपाकर घूमने वाले शत्रुओं को जानने का प्रयत्न करना चाहिए, क्योंकि ऐसे शत्रु अपना विश्वास जमा लेते हैं किन्तु स्वयं किसी का भी विश्वास नहीं करते और अवसर पाते ही प्रहार कर देते हैं ।

३७. धर्ममर्थं च कामं च काले यस्तु निषेवते ॥ किष्किन्धा ३८।२०
विभज्य सततं वीर स राजा हरिसत्तम ।
हित्वा धर्मं तथार्थं च कामं यस्तु निषेवते ॥ किष्किन्धा ३८।२१
स वृक्षाग्रे यथा सुप्तः पतितः प्रतिबुध्यते ॥ किष्किन्धा ३८।२२

वीर, वानर श्रेष्ठ ! जो राजा, धर्म अर्थ और काम का उचित समय पर सेवन करता है वही श्रेष्ठ होता है । किन्तु जो राजा धर्म और अर्थ की उपेक्षा करके केवल काम का सेवन करता है वह पेड़ की अगली शाखा पर सोये हुए मनुष्य की भांति गिरने पर ही जागता है ।

३८. विगृह्यासनमप्याहुर्दुर्बलेन बलीयसा ।
आत्मरक्षाकरस्तस्मान्न विगृह्णीत दुर्बलः ॥ किष्किन्धा ५४।१२

कमजोर शत्रु के साथ झगड़ा करके बलवान् पुरुष सुख से बैठ सकता है किन्तु अपनी रक्षा करने वाले निर्बल मनुष्य को बलवान् से झगड़ा नहीं करना चाहिए ।

३९. मूलमर्थस्य संरक्ष्यमेष कार्यविदां नयः ।
मूले हि सति सिध्यन्ति गुणाः सर्वे फलोदयाः ॥ किष् ६५।२५

किसी काम के मुख्य भाग की रक्षा करनी चाहिए, कार्य सिद्ध करने वाले इसी नीति पर चलते हैं, क्योंकि मूल वस्तु के सुरक्षित रहने पर सभी काम पूरे हो सकते हैं ।

४०. न साम रक्षःसु गुणाय कल्पते, न दानमर्थोपचितेषु युज्यते।
न भेदसाध्या बलदर्पिता जनाः, पराक्रमस्त्वेष ममेह रोचते।।

सुन्दर ४१।३

राक्षसों के प्रति साम (शान्ति) की नीति पर चलने से कोई लाभ नहीं होता, दुष्ट लोगों के पास धन भी बहुत होता है अतः उन्हें पैसा देने से भी कोई बात नहीं बनती। राक्षस स्वभाव के लोग बल के घमण्ड में चूर रहते हैं इसलिए फूट डालने की नीति (भेदनीति) भी सफल नहीं होती। केवल पराक्रम से ही ये लोग वश में आते हैं।

४१. कार्ये कर्मणि निर्वृत्ते यो बहून्यपि साधयेत्।
पूर्वकार्याविरोधेन स कार्यं कर्त्तुमर्हति।। सुन्दर ४१।५

जो व्यक्ति मुख्य कार्य पूरा हो जाने पर अन्य बहुत से काम भी पूरे कर लेता है और पहले किये हुए कामों में रुकावट नहीं आने देता है वही पुरुष अपने सभी कार्य सुचारु रूप से कर सकता है।

४२. न ह्येकः साधकः हेतुः स्वल्पस्यापीह कर्मणः।
यो ह्यर्थं बहुधा वेद स समर्थोऽर्थसाधने।। सुन्दर ४१।६

छोटे से काम को पूरा करने के लिए एक ही कारण नहीं हुआ करता। जो व्यक्ति कोई काम अनेक ढंग से पूरा करना जानता है वही सभी काम कर सकता है।

४३. उपायकुशलो ह्येव जयेच्छत्रूनतन्द्रितः।। युद्ध ८।१२

तरह तरह के उपाय जानने वाला सावधान व्यक्ति ही शत्रुओं को जीत सकता है।

४४. अप्युपायैस्त्रिभिस्तात योऽर्थः प्राप्तुं न शक्यते।
तस्य विक्रमकालांस्तान् युक्तानाहुर्मनीषिणः।। युद्ध ९।८

जो काम साम, दान और भेद इन तीन उपायों से नहीं बन पाता उसे पूरा करने के लिए नीतिशास्त्र विशारदों ने पराक्रम करने योग्य अवसर बताये हैं।

४५. प्रमत्तेष्वभियुक्तेषु दैवेन प्रहतेषु च ।
विक्रमास्तात सिद्ध्यन्ति परीक्ष्य विधिना कृता ॥ युद्ध ९।९

असावधान, किसी शत्रु के आक्रमण या बीमारी आदि किसी दैवीय विपत्ति से परेशान शत्रु पर भलीभांति सोच समझ कर किया गया पराक्रमपूर्ण आक्रमण सफल होता है ।

४६. न्यायेन राजकार्याणि यः करोति दशानन ।
न स सन्तप्यते पश्चान्निश्चितार्थमतिर्नृपः ॥ युद्ध १२।३०

ऐ रावण ! जो राजा राज्य के सारे कार्य न्यायपूर्वक करता है, ऐसे निश्चयपूर्ण बुद्धि वाले राजा को बाद में पछताना नहीं पड़ता ।

४७. अनुपायेन कर्माणि विपरीतानि यानि च ।
क्रियमाणानि दुष्यन्ति हवींष्यप्रयतेष्विव ॥ युद्ध १२।३१

जो कार्य ठीक उपाय का सहारा लिये बिना किये जाते हैं और लोक तथा शास्त्र मर्यादा के विरुद्ध होते हैं ऐसे पापपूर्ण कर्म उसी प्रकार बिगड़ जाते हैं जैसे अपवित्र यज्ञों में डाली गई आहुति ।

४८. यः पश्चात् पूर्वकार्याणि कर्माण्यभिचिकीर्षति ।
पूर्वं चापरकार्याणि स न वेद नयानयौ ॥ युद्ध १२।३२

जो व्यक्ति पहले किये जाने वाले काम पीछे करता है और पीछे करने योग्य कार्य पहले कर डालता है वह नीति और अनीति में भेद नहीं जानता ।

४९. मित्राटविबलं चैव मौलभृत्यबलं तथा ।
सर्वमेतद् बलं ग्राह्यं वर्जयित्वा द्विषद्बलम् ॥ युद्ध १७।२४

मित्रों की, वनवासी जातियों की तथा परम्परागत भृत्यों की सेना और शक्ति का सहारा लेना चाहिए किन्तु शत्रुपक्ष के सैनिकों का सहारा नहीं लेना चाहिए ।

५०. छादयित्वाऽऽत्मभावं हि चरन्ति शठबुद्धयः ।
प्रहरन्ति च रन्ध्रेषु सोऽनर्थः सुमहान् भवेत् ॥ युद्ध १७।४०

पाप बुद्धि वाले लोग अपने मन की बात छिपाकर ताक में लगे रहते हैं और मौका पाते ही चोट कर देते हैं जिससे बहुत नुकसान हो जाता है ।

५१. अर्थानर्थौ विनिश्चित्य व्यवसायं भजेत ह ।
गुणतः संग्रहं कुर्याद् दोषतस्तु विसर्जयेत् ॥ युद्ध १७।४१

हानि और लाभ का निश्चय करके कोई काम शुरू करना चाहिए। यदि किसी बात में अच्छाई दीखे तो उसे अपना लेना चाहिए और दोषपूर्ण वस्तु छोड़ देनी चाहिए ।

५२. यदि दोषो महांस्तस्मिंस्त्यज्यतामविशङ्कितम् ।
गुणान् वापि बहून् ज्ञात्वा संग्रहः क्रियतां नृप ॥ युद्ध १७।४२

हे राजन् ! यदि किसी में बहुत बुराइयां हों तो उसे निश्चित रूप से छोड़ देना चाहिए । यदि कोई वस्तु या व्यक्ति गुणों की खान हो तो उसे अपना लेना चाहिए ।

५३. अमित्रास्तत्कुलीनाश्च प्रातिदेश्याश्च कीर्तिताः ।
व्यसनेषु प्रहर्तारस्तस्मादयमिहागतः ॥ युद्ध १८।१०

राजा की दो प्रकार की कमजोरियां (छिद्र) होती हैं—राजा के कुल में उत्पन्न भाई-बन्धु और पड़ोसी शत्रु । ये दोनों संकट आने पर चोट कर बैठते हैं ।

५४. बद्धाञ्जलिपुटं दीनं याचन्तं शरणागतम् ।
न हन्यादानृशंस्यार्थमपि शत्रुं परन्तप ॥ युद्ध १८।२७

शत्रुओं को तपाने वाले ! यदि शत्रु हाथ जोड़ कर दीन भाव से अपने जीवन की भीख मांगता हुआ शरण में आये तो उस पर दया करनी चाहिए और उसे नहीं मारना चाहिए ।

५५. आर्तो वा यदि वा दृप्तः परेषां शरणं गतः ।
अरिः प्राणान् परित्यज्य रक्षितव्यः कृतात्मना ॥ युद्ध १८।२८

शत्रु दुःखी हो या अभिमानी, किन्तु यदि वह अपने विरोधी की

शरण में जाये तो चरित्रवान् व्यक्ति को अपने प्राणों की बाजी लगा कर भी शरणागत की रक्षा करनी चाहिए ।

५६. स चेद् भयाद् वा मोहाद् वा कामाद् वापि न रक्षति ।
स्वया शक्त्या यथान्यायं तत् पापं लोकगर्हितम् ॥ युद्ध १८।२९

यदि कोई व्यक्ति शरणागत की डर, अज्ञान या किसी इच्छा के कारण अपनी शक्ति से शरणागत की रक्षा नहीं करता तो उसके ऐसे काम की निन्दा होती है ।

५७. विनष्टः पश्यतस्तस्य रक्षिणः शरणं गतः ।
आनाय सुकृतं तस्य सर्वं गच्छेदरक्षितः ॥ युद्ध १८।३०

यदि शरण में आया पुरुष संरक्षण न पाकर रक्षक की आंखों के सामने ही नष्ट हो जाता है तो वह रक्षक पुरुष का सारा पुण्य भी ले जाता है ।

५८. एवं दोषो महानत्र प्रपन्नानामरक्षणे ।
अस्वर्ग्यं चायशस्यं च बलवीर्यविनाशनम् ॥ युद्ध १८।३१

शरणागत की रक्षा न करने में अनेक बुराइयां हैं । शरणागत की रक्षा न करने से स्वर्ग नहीं मिलता । यश नष्ट हो जाता है और बल तथा पराक्रम भी समाप्त हो जाता है ।

५९. राजदण्ड परामृष्टास्तिष्ठन्ते नापराधिनः ॥ युद्ध २९।१२

राजदण्ड पाकर अपराधी ठहर नहीं सकते, वे नष्ट हो जाते हैं ।

६०. चारेण विदितः शत्रुः पण्डितैर्वसुधाधिपैः ।
युद्धे स्वल्पेन यत्नेन समासाद्य निरस्यते ॥ युद्ध २९।२१

गुप्तचरों के द्वारा शत्रु की गतिविधि का भलीभांति पता लगा लेने पर योग्य राजा युद्ध में थोड़े से ही प्रयत्न से शत्रु को मार गिराते हैं ।

६१. प्रभवन्तं पदस्थं हि परुषं कोऽभिभाषते ।
पण्डितः शास्त्रतत्त्वज्ञो विना प्रोत्साहनेन वा ॥ युद्ध ३६।७

शत्रु का प्रोत्साहन पाये बिना कौन बुद्धिमान् और विद्वान् पुरुष, प्रभावशाली और अपने राज्य में बैठे राजा को कठोर बात कह सकता है ।

राजा

१. **आराधिता हि शीलेन प्रयत्नैश्चोपसेविताः ।**
राजानः सम्प्रसीदन्ति प्रकुप्यन्ति विपर्यये ।। अयोध्या २६।३५

ईमानदारी और सोच विचार कर प्रयत्नपूर्वक सेवा करने पर राजा और राजपुरुष प्रसन्न हो जाते हैं और इससे विपरीत आचरण से रुष्ट।

२. **यथा दृष्टिः शरीरस्य नित्यमेव प्रवर्तते ।**
तथा नरेन्द्रो राष्ट्रस्य प्रभवः सत्यधर्मयोः ।। अयोध्या ६७।३३

जैसे आंख शरीर का सदा ध्यान रखती है उसी प्रकार राजा अपने राज्य में सत्यव्यवहार और धर्माचरण का पालन कराता है ।

३. **राजा सत्यं च धर्मश्च राजा कुलवतां कुलम् ।**
राजा मातापिता चैव राजा हितकरो नृणाम् ।। अयोध्या ६७।३४

राजा ही सत्य और धर्म का पालन कराता है, राजा ही कुलीन पुरुषों की रक्षा करता है, राजा ही माता-पिता की भाँति प्रजा का पालन-पोषण करता है और लोगों की हर तरह से भलाई करता है ।

४. **यमो वैश्रवणः शक्रो वरुणश्च महाबलः ।**
विशिष्यन्ते नरेन्द्रण वृत्तेन महता ततः ।। अयोध्या ६७।३५

राजा अपने महान् चरित्र के द्वारा यम, कुबेर, इन्द्र और महाबली वरुण से भी आगे बढ़ जाता है क्योंकि वह इन चारों देवताओं के गुणों और कार्य को अपनाकर प्रजा की भलाई करता है ।

५. **अहो तम इवेदं स्यान्न प्रज्ञायेत किञ्चन ।**
राजा चेन्न भवेल्लोके विभजन् साध्वसाधुनी ।। अयोध्या६७।३६

यदि संसार में भले बुरे को अलग करने वाला राजा न हो तो सारे राज्य में अन्धकार सा छा जायेगा और कुछ भी दिखाई नहीं देगा ।

६. नृपं विना राष्ट्रमरण्यभूतम् ॥ अयोध्या ६७।३८

राजा के बिना देश जंगल सा हो जाता है ।

७. सक्तं ग्राम्येषु भोगेषु कामवृत्तं महीपतिम् ।
लुब्धं न बहु मन्यन्ते श्मशानाग्निमिव प्रजाः ॥ अरण्य ३३।३

जब राजा निकृष्ट कोटि के भोगों में फंस जाता है और स्वेच्छाचारी तथा लोभी हो जाता है तब प्रजा श्मशान की अग्नि की भांति राजा का आदर नहीं करती ।

८. स्वयं कार्याणि यः काले नानुतिष्ठति पार्थिवः ।
स तु वै सह राज्येन तैश्च कार्यैर्विनश्यति ॥ अरण्य ३३।४

जो राजा उचित समय पर अपने काम नहीं करता वह अपने राज्य और उन कार्यों के साथ नष्ट हो जाता है ।

९. अयुक्तचारं दुर्दर्शमस्वाधीनं नराधिपम् ।
वर्जयन्ति नरा दूरान्नदीपङ्कमिव द्विपाः ॥ अरण्य ३३।५

जो राजा गुप्तचर नहीं रखता, जिस राजा से प्रजा मिल नहीं सकती और जो राजा भोगों में लिप्त हो जाने से अपनी स्वाधीनता खो बैठता है उसे प्रजा उसी प्रकार त्याग देती है जैसे हाथी नदी की कीचड़ से दूर रहता है ।

१०. ये न रक्षन्ति विषयमस्वाधीनं नराधिपाः ।
ते न वृद्ध्या प्रकाशन्ते गिरयः सागरे यथा ॥ अरण्य ३३।६

जो राजा शत्रु के अधिकार में चले गये अपने प्रदेश की रक्षा नहीं कर पाते, अपने अधिकार में नहीं लेते हैं, वे समुद्र में डूबे पर्वतों की भांति भुला दिये जाते हैं ।

११. येषां चाराश्च कोशश्च नयश्च जयतां वर ।
अस्वाधीना नरेन्द्राणां प्राकृतैस्ते जनैः समाः ॥ अरण्य ३३।९

विजयी वीरों में श्रेष्ठ रावण ! जिन राजाओं के गुप्तचर, कोश और नीति अपने अधीन नहीं होती वे राजा साधारण लोगों के समान ही

होते हैं ।

१२. यस्मात् पश्यन्ति दूरस्थान् सर्वानर्थान् नराधिपाः ।
चारेण तस्मादुच्यन्ते राजानो दीर्घचक्षुषः ॥ अरण्य ३३।१०

राजा अपने गुप्तचरों की सहायता से राज्य के सुदूरवर्ती क्षेत्रों की निगरानी करते रहते हैं इसीलिए राजा को दूरदर्शी कहा जाता है ।

१३. तीक्ष्णमल्पप्रदातारं प्रमत्तं गर्वितं शठम् ।
व्यसने सर्वभूतानि नाभिधावन्ति पार्थिवम् ॥ अरण्य ३३।१५

कठोर व्यवहार और तीखे स्वभाव वाले, कर्मचारियों को कम वेतन देने वाले, अभिमानी, आलसी और दुष्ट राजा के मुसीबत में पड़ने पर प्रजा उसका साथ नहीं देती ।

१४. अतिमानिनमग्राह्यमात्मसम्भावितं नरम् ।
क्रोधनं व्यसने हन्ति स्वजनोऽपि नराधिपम् ॥ अरण्य ३३।१६

जो मनुष्य या राजा अत्यन्त अभिमानी, कठोर व्यवहार के कारण प्रजा का अप्रिय, अपने को बहुत बड़ा मानने वाला और क्रोधी होता है उसे संकट में फंसा देखकर अपने ही लोग मार डालते हैं ।

१५. नानुतिष्ठति कार्याणि भयेषु न बिभेति यः ।
क्षिप्रं राज्याच्च्युतो दीनस्तृणैस्तुल्यो भवेदिह ॥ अरण्य ३३।१७

जो राजा करने योग्य काम समय पर नहीं करता और कर्त्तव्य पालन नहीं करता तथा संकट में अपनी रक्षा नहीं करता वह राज्य से हाथ धो बैठता है और दीन हो जाता है ।

१६. शुष्ककाष्ठैर्भवेत् कार्यं लोष्ठैरपि च पांसुभिः ।
न तु स्थानात् परिभ्रष्टैः कार्यं स्याद् वसुधाधिपैः ॥

अरण्य ३३।१८

मनुष्य के लिए सूखी लकड़ी, मिट्टी के ढेले और धूल भी उपयोगी होती है किन्तु अपने पद से हटे राजाओं से प्रजा का कोई सरोकार नहीं रहता ।

१७. उपभुक्तं यथा वासः स्रजो वा मृदिता यथा ।
एवं राज्यात् परिभ्रष्टः समर्थोऽपि निरर्थकः ॥ अरण्य ३३।१९

जैसे पहिने हुए वस्त्र और मसली हुई माला बेकार हो जाती है उसी प्रकार अपना राज्य खोकर शक्तिशाली राजा भी अशक्त हो जाता है ।

१८. अप्रमत्तश्च यो राजा सर्वज्ञो विजितेन्द्रियः ।
कृतज्ञो धर्मशीलश्च स राजा तिष्ठते चिरम् ॥ अरण्य ३३।२०

जो राजा सदा सावधान रहता है, राज्य के सभी कामों की जानकारी रखता है, जितेन्द्रिय, कृतज्ञ और धार्मिक है वह बहुत समय तक राज्य करता है ।

१९. नयनाभ्यां प्रसुप्तो वा जागर्ति नयचक्षुषा ।
व्यक्तक्रोधप्रसादश्च स राजा पूज्यते जनैः ॥ अरण्य ३३।२१

जो राजा आंख बन्द कर सोने पर भी अपनी नीतिरूपी आंखों से सदा जागता रहता है तथा जिसके क्रोध और प्रसन्नता का फल दीखता है लोग उसे पूजते हैं ।

२०. त्वद्विधः कामवृत्तो हि दुःशीलः पापमन्त्रितः ।
आत्मानं स्वजनं राष्ट्रं स राजा हन्ति दुर्मतिः ॥ अरण्य ३७।७

जो राजा तुम्हारे जैसा स्वेच्छाचारी, दुराचारी, पापपूर्ण विचारों वाला और मूर्ख होता है वह अपना, अपने सम्बन्धियों का और सारे देश का नाश कर डालता है ।

२१. यद्वृत्ताः सन्ति राजानस्तद्वृत्ताः सन्ति हि प्रजाः ॥
अयोध्या १०९।९

राजाओं का जैसा आचरण होता है प्रजाजन भी वैसा ही आचरण करते हैं ।

२२. व्यसनं स्वामिवैगुण्यात् प्राप्नुवन्तीतरे जनाः ॥ अरण्य ४१।९

राजा के दोषों का फल प्रजा को भी भुगतना पड़ता है ।

२३. पञ्चरूपाणि राजानो धारयन्त्यमितौजसः ।
अग्नेरिन्द्रस्य सोमस्य यमस्य वरुणस्य च ॥ अरण्य ४०।१२
औष्ण्यं तथा विक्रमं च सौम्यं दण्डं प्रसन्नताम् ।
धारयन्ति महात्मानो राजानः क्षणदाचर ॥ अरण्य ४०।१३

अरे राक्षस ! अत्यन्त तेजस्वी राजाओं में अग्नि, इन्द्र, सोम, यम और वरुण इन पांच देवताओं के गुण होते हैं । ऐसे राजाओं में अग्नि के समान उष्णता अर्थात् तेजस्विता, इन्द्र जैसा पराक्रम, सोम सदृश सौम्यता, यम जैसी दण्ड देने की शक्ति और वरुण के समान स्निग्धता होती है ।

२४. राज्यं पालयितुं शक्यं न तीक्ष्णेन निशाचर ।
न चाप्रतिकूलेन नाविनीतेन राक्षस ॥ अरण्य ४१।११

ऐ निशाचर राक्षस ! अत्यन्त उग्र स्वभाव वाले राजा अपने राज्य की रक्षा नहीं कर सकते । प्रजा की इच्छा की परवाह न करने वाले और उद्दण्ड स्वभाव के राजा भी अपना राज्य नहीं संभाल सकते ।

२५. स्वामिना प्रतिकूलेन प्रजास्तीक्ष्णेन रावण ।
रक्ष्यमाणा न वर्धन्ते मेषा गोमायुना यथा ॥ अरण्य ४१।१४

रावण ! प्रजा की इच्छा के प्रतिकूल चलने वाले और उग्रस्वभाव वाले राजा के अधीन प्रजा की उन्नति उसी प्रकार नहीं होती जैसे गीदड़ की रखवाली में भेड़ों की संख्या बढ़ने नहीं पाती ।

२६. राजा धर्मश्च कामश्च द्रव्याणां चोत्तमो निधिः ।
धर्मः शुभं वा पापं वा राजमूलं प्रवर्तते ॥ अरण्य ५०।१०

राजा धर्म और उचित कार्यों का प्रवर्त्तक होता है । वह उत्तम पदार्थों की निधि होता है । धर्म, सदाचार और पाप का मूल कारण राजा ही होता है ।

२७. अर्थं वा यदि वा कामं शिष्टाः शास्त्रेष्वनागतम् ।
व्यवस्यन्त्यनु राजानं धर्मं पौलस्त्यनन्दन ॥ अरण्य ५०।९

हे रावण ! धर्म, अर्थ और काम की जिन बातों का शास्त्रों में उल्लेख नहीं होता उन बातों का पालन प्रजा जन राजा के आचरण को देखकर करते हैं ।

२८. युक्तदण्डा हि मृदवः प्रशान्ता वसुधाधिपाः ॥ अरण्य ६५।१०

राजा अपराध के अनुसार उचित दण्ड देने वाले, कोमल स्वभाव के और शान्त होते हैं ।

२९. न ह्यबुद्धिं गतो राजा सर्वभूतानि शास्ति ॥ किष्किन्धा २।१८

अपनी बुद्धि का प्रयोग न करने वाला राजा सारी प्रजा पर शासन नहीं कर सकता ।

३०. राजानो बहुमित्राश्च विश्वासो नात्र हि क्षमः ॥ किष् २।२१

राजाओं के अनेक मित्र होते हैं अतः उन पर विश्वास करना ठीक नहीं ।

३१. दमः शमः क्षमा धर्मो धृतिः सत्यं पराक्रम ।
पार्थिवानां गुणा राजन् दण्डश्चाप्यपकारिषु ॥

किष्किन्धा १७।१९।।२९

हे राजा ! इन्द्रियों का दमन, मन का सयम, क्षमा, धर्म, धैर्य, सत्य, पराक्रम तथा अपराधियों को दण्ड देना राजा के गुण होते हैं ।

३२. नयश्च विनयश्चोभौ निग्रहानुग्रहावपि ।
राजवृत्तिरसङ्कीर्णा न नृपाः कामवृत्तयः ॥ किष्किन्धा १७।३२

नीति और विनय, दण्ड और दया इन राजधर्मों का विवेकपूर्वक उपयोग करना चाहिए । राजाओं को स्वेच्छाचारी नहीं होना चाहिए।

३३. नयश्च विनयश्चोभौ यस्मिन् सत्यं च सुस्थितम् ।
विक्रमश्च यथा दृष्टः स राजा देशकालवित् ॥ किष् १८।८

जिस राजा में नीति और विनय, सत्य और पराक्रम जैसे गुण होते हैं वही राजा देश और काल अर्थात् परिस्थिति और अवसर का जानकार होता है ।

३४. **यस्य कोशश्च दण्डश्च मित्राण्यात्मा च भूमिप ।**
समान्येतानि सर्वाणि स राज्यं महदश्नुते ॥ किष्किन्धा २९।११

हे राजा ! जिसका खजाना और सेना, मित्र तथा अपना शरीर ये सब अपने वश में रहते हैं वह राजा भली भांति शासन करता है ।

३५. **सत्त्वाभिजनसम्पन्नः सानुक्रोशो जितेन्द्रियः ।**
कृतज्ञः सत्यवादी च राजा लोके महीयते ॥ किष्किन्धा ३४।७

धैर्यशाली, कुलीन, दयालु, जितेन्द्रिय, कृतज्ञ और सत्यवादी राजा का संसार में आदर किया जाता है ।

३६. **अकृतात्मानमासाद्य राजानमनये रतम् ।**
समृद्धानि विनश्यन्ति राष्ट्राणि नगराणि च ॥ सुन्दर २१।११

हितकारी बात न मानने वाले और अनाचार में लिप्त राजा के हाथ आये समृद्ध राष्ट्र और नगर नष्ट हो जाते हैं ।

३७. **न्यायेन राजकार्याणि यः करोति दशानन ।**
न स सन्तप्यते पश्चान्निश्चितार्थमतिर्नृपः ॥ युद्ध १२।३०

रावण ! जो राजा सारे राज्यकार्य न्यायपूर्वक करता है उसे पीछे नहीं पछताना पड़ता क्योंकि उसकी बुद्धि निश्चयात्मक होती है ।

३८. **विद्यास्वभिविनीतो यो राजा राजन् नयानुगः ।**
स शास्ति चिरमैश्वर्यमरींश्च कुरुते वशे ॥ युद्ध ३५।७

हे राजन् ! सुशिक्षित और उचित नीति का पालन करने वाला राजा दीर्घकाल तक ऐश्वर्य भोगता है और राज्य करता है । ऐसा राजा शत्रुओं को वश में कर लेता है ।

३९. **सन्दधानो हि कालेन विगृह्णंश्चारिभिः सह ।**
स्वपक्षे वर्धनं कुर्वन् महदैश्वर्यमश्नुते ॥ युद्ध ३५।८

समय के अनुसार शत्रुओं के साथ सन्धि और युद्ध करने वाला तथा अपने पक्ष को बढ़ाने में लगा रहने वाला राजा महान् ऐश्वर्यशाली होता है ।

४०. हीयमानेन कर्तव्यो राज्ञा सन्धिः समेन च ।
न शत्रुमवमन्येत ज्यायान् कुर्वीत विग्रहम् ॥ युद्ध ३५।९

शक्ति कम होने पर और समान सामर्थ्य के शत्रु के साथ राजा को सन्धि कर लेनी चाहिए । शत्रु का अपमान नहीं करना चाहिए। अपनी शक्ति बढ़ने पर शत्रु से युद्ध करे ।

४१. हीनं रतिगुणैः सर्वैरभिहन्तारमाहवे ।
सेना त्यजति संविग्ना नृपतिं तं नरेश्वर ॥ युद्ध १२२।९

हे राजन् ! जो राजा अपने अनुचरों को सम्मान, पुरस्कार आदि देकर प्रसन्न नहीं रखता उसे युद्ध के समय सेना छोड़ देती है क्योंकि सैनिक यही सोचते हैं कि राजा व्यर्थ ही हमारी जान ले रहा है ।

४२. मा च बुद्धिमधर्मे त्वं कुर्या राजन् कथञ्चन् ।
बुद्धिमन्तो हि राजानो ध्रुवमश्नन्ति मेदिनीम् ॥ उत्तर ४०।११

हे राजन् ! तुम अपनी बुद्धि को अधर्माचरण में मत लगाना । ठीक बुद्धि वाले राजा बहुत वर्षों तक पृथ्वी पर शासन करते रहते हैं ।

४३. वक्तव्यतां च राजानो वने राज्ये व्रजन्ति च ॥ उत्तर ४३।६

आचारहीन राजाओं की उनके राज्य में तथा वनों में रह रहे ऋषियों में निन्दा होती है ।

४४. यथा हि कुरुते राजा प्रजास्तमनुवर्तते ॥ उत्तर ४३।१९

राजा जैसा आचरण करता है वैसा ही आचरण प्रजा भी करने लगती है ।

४५. कार्यार्थिनां विमर्दो हि राज्ञां दोषाय कल्पते ॥ उत्तर ५३।२५

यदि राजा लोगों के कामों पर ध्यान नहीं देता तो प्रजा में असन्तोष होने लगता है ।

४६. राजा सुप्तेषु जागर्ति राजा पालयति प्रजाः ॥ उत्तर-प्रक्षिप्त २।४

सारी प्रजा के सोते हुए भी राजा जागता रहता है और अपनी प्रजा

का पालन करता रहता है ।

४७. नीत्या सुनीतया राजा धर्मं रक्षति रक्षिता ।
यदा न पालयेत् राजा क्षिप्रं नश्यति वै प्रजाः॥ उत्तर-प्रक्षि.२।५

राजा सम्पूर्ण प्रजा की रक्षा करता है । वह उचित नीतियों का पालन कर धर्म की और प्रजा की रक्षा करता है । यदि राजा प्रजा की रक्षा न करे तो प्रजा जल्दी ही नष्ट हो जाती है ।

४८ राजा कर्ता च गोप्ता च सर्वस्य जगतः पिता ।
राजा कालो युगं चैव राजा सर्वमिदं जगत् ॥ उत्तर-प्रक्षिप्त २।६

राजा सभी कार्यों को प्रारम्भ कराने वाला और उनकी रक्षा करने वाला होता है । राजा सम्पूर्ण प्रजा का पिता की भांति पालन-पोषण करता है । राजा ही अपने समय की मर्यादाएं निश्चित करता है और इन मर्यादाओं का दीर्घकाल तक पालन करता है । सारे संसार पर राजा के आचार विचार का प्रभाव पड़ता है ।

४९. धर्मेण राष्ट्रं विन्देत धर्मेणैवानुपालयेत् ।
धर्माच्छरण्यतां याति राजा सर्वभयापहः ॥ उत्तर-प्रक्षिप्त २।१५

राजा को धर्मानुसार राज्य प्राप्त करना चाहिए और धर्माचरण से ही राज्य का पालन-पोषण करना चाहिए । धर्म का आश्रय लेने पर ही राजा सब को शरण दे पाता है और सभी प्रकार के भय मिटाता है ।

५०. राजा शास्ता हि सर्वस्य ॥ उत्तर-प्रक्षिप्त २।३६

राजा सभी लोगों का शासक होता है ।

५१. राजदोषैर्विपद्यन्ते प्रजा ह्यविधिपालिताः ।
असद्वृत्ते हि नृपतावकाले म्रियते जनः ॥ उत्तर ७३।१६

राजा के दोषों से प्रजा का भलीभांति पालन-पोषण न होने पर प्रजा जन विपत्तियों में पड़ जाते हैं । राजा के दुराचारी हो जाने पर प्रजा की अकाल मृत्यु हो जाती है ।

५२. यद् वा पुरेष्वयुक्तानि जना जनपदेषु च ।
कुर्वते न च रक्षास्ति तदा कालकृतं भयम् ॥

उत्तर ७३।१७

जब लोग नगरों में और जनपदों में अनुचित कर्म पाप, अपराध आदि करने लगते हैं और ऐसे कामों को न तो रोका जाता है और न ही अपराधों आदि से प्रजा की रक्षा की जाती है तो प्रजा की अकाल-मृत्यु होने लगती है ।

५३. अधीतस्य च तप्तस्य कर्मणः सुकृतस्य च ।
षष्ठं भजति भागं तु प्रजा धर्मेण पालयन् ॥ उत्तर ७४।३१

जो राजा अपनी प्रजा का धर्मपूर्वक पालन करता है उसे अपनी प्रजा के अध्ययन, तपस्या और शुभ कर्मों के पुण्य का छठा भाग मिलता है ।

५४. पिता हि सर्वभूतानां राजा भवति धर्मतः ॥ उत्तर ९३।१५

राजा धर्म की दृष्टि से सम्पूर्ण प्राणियों का पिता होता है ।

रामराज्य

१. न पर्यदेवयन् विधवा न च व्यालकृतं भयम् ।
न व्याधिजं भयं चासीद् रामे राज्यं प्रशासति ॥ युद्ध १२८।९८

श्रीराम के शासनकाल में विधवाओं का विलाप कभी सुनाई नहीं देता था । प्रजा को सांप, शेर आदि हिंस्र जन्तुओं और बीमारियों का भी भय नहीं था ।

२. निर्दस्युरभवल्लोको नानर्थं कश्चिदस्पृशत् ।
न च स्म वृद्धा बालानां प्रेतकार्याणि कुर्वते ॥ युद्ध १२८।९९

सारे राज्य में चोर डाकुओं का आतंक मिट गया था । कोई भी व्यक्ति हानि पहुंचाने वाला कोई काम नहीं करता था और बूढ़ों को अपने बच्चों की अन्त्येष्टि नहीं करनी पड़ती थी ।

३. **सर्वं मुदितमेवासीत् सर्वो धर्मपरोऽभवत् ।**
राममेवानुपश्यन्तो नाभ्यहिंसन् परस्परम् ॥ युद्ध १२८।१००

सारी प्रजा प्रसन्न रहती थी, सभी लोग धर्म का पालन करते थे। लोग श्रीराम के आचरण का अनुसरण करते हुए एक दूसरे को हानि नहीं पहुंचाते थे ।

४. **आसन् वर्षसहस्त्राणि तथा पुत्रसहस्त्रिणः ।**
निरामया विशोकाश्च रामे राज्यं प्रशासति ॥ युद्ध १२८।१०१

राम राज्य में लोग हजारों वर्षों तक जीवित रहते थे और हजारों पुत्र उत्पन्न करते थे । सारी प्रजा रोग और शोक से रहित थी ।

५. **रामो रामो राम इति प्रजानामभवन् कथाः ।**
रामभूतं जगदभूद् रामे राज्यं प्रशासति ॥ युद्ध १२८।१०२

रामराज्य में प्रजा केवल राम की ही चर्चा करती थी । सारा संसार ही राममय हो गया था ।

६. **नित्यमूला नित्यफलास्तरवस्तत्र पुष्पिताः ।**
कामवर्षी च पर्जन्यः सुखस्पर्शश्च मारुतः ॥ युद्ध १२८।१०३

श्रीराम के राज्य में वृक्षों की जड़ें मजबूत रहती थीं । पेड़ों पर फल-फूल लदे रहते थे । समय पर आवश्यकतानुसार वर्षा होती थी। सुखदायक पवन बहता था ।

७. **ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा लोभविवर्जिताः ।**
स्वकर्मसु प्रवर्तन्ते तुष्टाः स्वैरेव कर्मभिः ॥ युद्ध १२८।१०४

रामराज्य में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र लोभी नहीं थे । वे सब अपने अपने कामों से सन्तुष्ट रहते थे और अपने कामों में लगे रहते थे ।

८. **दशवर्षसहस्त्राणि दशवर्षशतानि च ।**
भ्रातृभिः सहितः श्रीमान् रामो राज्यमकारयत् ॥

युद्ध १२८।१०६

श्रीराम ने भाइयों सहित ग्यारह हजार वर्षों तक राज्य किया ।

९. **अनामयश्च मर्त्यानां साग्रो मासो गतो ह्ययम् ॥** उत्तर ४१।१८
जीर्णानामपि सत्त्वानां मृत्युर्नायाति राघव ।
आरोग्यप्रसवा नार्यो वपुष्मन्तो हि मानवाः ॥ उत्तर ४१।१९

आपके राज्याभिषेक को एक मास से अधिक हो चुका है। तब से सभी लोग नीरोग हैं, वृद्ध लोगों के पास भी मृत्यु नहीं फटक रही है । स्त्रियां बिना कष्ट और रोग के सन्तान उत्पन्न कर रही हैं और मनुष्यों के शरीर हृष्ट पुष्ट हैं ।

१०. **हर्षश्चाभ्यधिको राजञ्जनस्य पुरवासिनः ।**
काले वर्षति पर्जन्यः पातयन्नमृतं पयः ॥ उत्तर ४१।२०

राजन् ! नगरवासी बहुत प्रसन्न हैं और मेघ अमृत तुल्य जल की वर्षा समय पर कर रहे हैं ।

११. **वाताश्चापि प्रवान्त्येते स्पर्शयुक्ताः सुखाः शिवाः ।**
ईदृशो नश्चिरं राजा भवेदिति नरेश्वरः ॥ उत्तर ४१।२१
कथयन्ति पुरे राजन् पौरजानपदास्तथा ।

सुखकारी और कल्याणकारी पवन बहता रहता है । राजन् ! नगर और जनपदों के निवासी कहते हैं कि चिरकाल तक हमारे राजा आप ही रहें ।

१२. **नाधयो व्याधयश्चैव रामे राज्यं प्रशासति ।**
पक्वसस्या वसुमती सर्वौषधिसमन्विता ॥ उत्तर-प्रक्षिप्त १।८

रामराज्य में किसी प्रकार की शारीरिक और मानसिक बीमारियां नहीं होती थीं । पृथ्वी पर सब प्रकार के अन्न और ओषधियां उत्पन्न होती थीं ।

१३. **न बालो म्रियते तत्र न युवा न च मध्यमः ।**
धर्मेण शासितं सर्वं न च बाधा विधीयते ॥ उत्तर-प्रक्षिप्त १।९

रामराज्य में बालक, युवक और प्रौढ़ व्यक्ति की मृत्यु नहीं होती

थी । सारी प्रजा पर धर्मानुसार शासन होता था, किसी के सामने कोई कठिनाई नहीं आती थी ।

१४. नाकाले म्रियते कश्चिन्न व्याधिः प्राणिनां तथा ।
नानर्थो विद्यते कश्चिद् रामे राज्यं प्रशासति ॥ उत्तर ९९।१४

रामराज्य में किसी की अकाल मृत्यु नहीं होती थी । प्राणियों को कोई रोग नहीं होता था तथा संसार में कोई उपद्रव खड़ा नहीं होता था।

रामायण

१. धर्म्यं यशस्यमायुष्यं राज्ञां च विजयावहम् ।
आदिकाव्यमिदं चार्षं पुरा वाल्मीकिना कृतम् ॥

युद्ध १२८।१०७

महर्षि वाल्मीकि ने सृष्टि के पूर्वकाल में इस आदिकाव्य रामायण की रचना की थी । सृष्टि का यह सर्वप्रथम काव्यग्रन्थ धर्म, यश, दीर्घायुष्य देने वाला तथा राजाओं को विजय प्रदान करने वाला है ।

२. रामायणमिदं कृत्स्नं श‍ृण्वतः पठतः सदा ।
प्रीयते सततं रामः स हि विष्णुः सनातनः ॥ युद्ध १२८।११९

जो व्यक्ति इस रामायण काव्य का नित्य पठन और श्रवण करता है उस पर सनातन विष्णुस्वरूप भगवान् श्रीराम सदा प्रसन्न रहते हैं ।

३. आयुष्यमारोग्यकरं यशस्यं सौभ्रातृकं बुद्धिकरं शुभं च ।
श्रोतव्यमेतन्नियमेन सद्भिराख्यानमोजस्करमृद्धिकामैः ॥

युद्ध १२८।१२५

यह काव्य दीर्घायु, आरोग्य, यश तथा भाइयों के बीच स्नेह को बढ़ाता है । यह सद्बुद्धि और मांगल्य प्रदान करता है । अपनी समृद्धि चाहने वालों को यह आदिकाव्य नित्य सुनना चाहिए । रामायण उत्साह-वर्धक है ।

४. सन्निबद्धं हि श्लोकानां चतुर्विंशत्सहस्त्रकम् ।
उपाख्यानशतं चैव भार्गवेण तपस्विना ॥ उत्तर ९४।२६

तपस्वी आदि कवि वाल्मीकि रचित इस काव्य में चौबीस हजार श्लोक और एक सौ उपाख्यान हैं ।

५. **आदिप्रभृति वै राजन् पञ्चसर्गशतानि च ।**
काण्डानि षट्कृतानीह सोत्तराणि महात्मना ॥ उत्तर ९४।२७

राजन् ! वाल्मीकि ऋषि ने आदि से लेकर अन्त तक पांच सौ सर्ग तथा छह काण्ड रचे हैं । उन्होंने उत्तरकाण्ड की भी रचना की है।

६. **कृतानि गुरुणास्माकमृषिणा चरितं तव ।**
प्रतिष्ठा जीवितं यावत् तावत् सर्वस्य प्रवर्तते ॥ उत्तर ९४।२८

हमारे गुरु महर्षि वाल्मीकि ने आपके जीवनचरित्र का वर्णन इस महाकाव्य में किया है । इसमें आपके जीवन की सारी बातें आ गई हैं ।

रावण

१. **कालस्य चाप्यहं कालो दहेयमपि पावकम् ।**
मृत्युं मरणधर्मेण संयोजयितुमत्सहे ॥ अरण्य ३१।६

मैं काल का भी काल हूं । मैं अग्नि को भी जलाकर नष्ट कर सकता हूं और मौत को भी मृत्यु के मुख में डाल सकता हूं ।

२. **न हि मे विप्रियं कृत्वा शक्यं मघवता सुखम् ।**
प्राप्तुं वैश्रवणेनापि न यमेन च विष्णुना ॥ अरण्य ३१।५

मेरा बुरा करके इन्द्र, कुबेर, यम और विष्णु भी चैन से नहीं रह सकते ।

३. **वातस्य तरसा वेगं निहन्तुमपि चोत्सहे ।**
दहेयमपि संक्रुद्धस्तेजसाऽऽदित्यपावकौ ॥ अरण्य ३१।७

क्रोध आने पर मैं अपने वेग से वायु की गति भी रोक सकता हूं और सूर्य तथा अग्नि को भी भस्म कर सकता हूं ।

४. **त्वद्विधः कामवृत्तो हि दुःशीलः पापमन्त्रितः ।**
आत्मानं स्वजनं राष्ट्रं स राजा हन्ति दुर्मतिः ॥ अरण्य ३७।७

तुम जैसा मूर्ख, स्वेच्छाचारी, दुराचारी और पाप बुद्धिवाला राजा अपना, अपने प्रियजनों का और सारे राष्ट्र का विनाश कर देता है ।

५. **यत्र तिष्ठाम्यहं तत्र मारुतो वाति शङ्कितः ।**
तीव्रांशुः शिशिरांशुश्च भयात् सम्पद्यते दिवि ॥ अरण्य ४८।८

जहां मैं चला जाता हूं वहां पर वायु मेरे डर से सहमी हुई चलने लगती है और आकाश में प्रचण्ड किरणों वाला सूर्य भी चन्द्रमा के समान ठण्डा हो जाता है ।

६. **उद्वहेयं भुजाभ्यां तु मेदिनीमम्बरे स्थितः ।**
आपिबेयं समुद्रं च मृत्युं हन्यां रणे स्थितः ॥ अरण्य ४९।३

मैं आकाश में खड़ा होकर अपनी दोनों भुजाओं से पृथ्वी को उठा सकता हूं, सारे समुद्र का पानी पी सकता हूं और युद्ध में मृत्यु को भी मार सकता हूं ।

७. **न दैवेषु न यक्षेषु न गन्धर्वेषु नर्षिषु ।**
अहं पश्यामि लोकेषु यो मे वीर्यसमो भवेत् ॥ अरण्य ५५।२०

देवताओं, यक्षों, गन्धर्वों, ऋषियों या सारे त्रिभुवन में भी मुझे ऐसा कोई नहीं दीखता जो मेरे समान पराक्रमी हो ।

८. **न चापि रावणः काञ्चिन्मूर्ध्ना स्त्रीं प्रणमेत ह ॥** अरण्य ५५।३७

रावण किसी भी नारी के सामने सिर झुकाकर प्रणाम नहीं करता।

९. **द्विधा भज्येयमप्येवं न नमेयं तु कस्यचित् ।**
एष मे सहजो दोषः स्वभावो दुरतिक्रमः ॥ युद्ध ३६।११

मैं टूट कर दो टुकड़े हो जाऊंगा परन्तु किसी के भी सामने झुक नहीं सकता, यह मेरे स्वभाव का दोष है और स्वभाव बदल नहीं सकता।

१०. **अहो दीप्त महातेजा रावणो राक्षसेश्वरः ॥** युद्ध ५९।२६

राक्षसराज रावण अत्यन्त तेजस्वी है ।

११. महर्षीणां वधो घोरः सर्वदेवैश्च विग्रहः ।
अभिमानश्च रोषश्च वैरत्वं प्रतिकूलता ॥ युद्ध ८७।२४
एते दोषा मम भ्रातुर्जीवितैश्वर्यनाशनाः ।
गुणान् प्रच्छादयामासुः पर्वतानिव तोयदाः ॥ युद्ध ८७।२५

महर्षियों का वध, सभी देवताओं से शत्रुता, अभिमान, रोष, वैर और धर्मविरुद्ध आचरण जैसे इन दोषों से मेरे भाई का जीवन और ऐश्वर्य नष्ट हो जाएगा । इन दोषों ने रावण के गुणों को उसी तरह ढक लिया है जैसे बादलों से पर्वत ओझल हो जाते हैं ।

१२. अनेन दत्तानि वनीयकेषु भुक्ताश्च भोगा निभृताश्च भृत्याः।
धनानि मित्रेषु समर्पितानि वैराण्यमित्रेषु च यापितानि ॥
युद्ध १०९।२२

इस रावण ने याचकों को दान दिया, ऐश्वर्यों का भोग किया, नौकरों को सन्तुष्ट किया, मित्रों को सम्पत्ति दी और वैरियों से बदला लिया।

१३. एषोऽहिताग्निश्च महातपाश्च वेदान्तगः कर्मसु चाग्र्यशूरः ॥
युद्ध १०९।२३

यह रावण यज्ञ करने वाला, महातपस्वी, वेदान्तवेत्ता और अत्यन्त कर्मठ था ।

१४. येन वित्रासितः शक्रो येन वित्रासितो यमः ।
येन वैश्रवणो राजा पुष्पकेण वियोजितः ॥ युद्ध ११०।१२
गन्धर्वाणामृषीणां च सुराणां च महात्मनाम् ।
भयं येन रणे दत्तं सोऽयं शेते रणे हतः ॥ युद्ध ११०।१३

जिसने इन्द्र और यमराज को भयभीत किया हुआ था, और कुबेर का पुष्पक विमान छीन लिया था । जिसने गन्धर्वों, ऋषियों, देवताओं, महात्माओं को भी युद्ध में डरा रखा था वह रावण आज युद्ध में मरा हुआ भूमि पर पड़ा है ।

१५. असुरेभ्यः सुरेभ्यो व पन्नगेभ्योऽपि वा तथा ।
भयं यो न विजानाति तस्येदं मानुषाद् भयम् ॥ युद्ध ११०।१४

जो रावण देवताओं, दानवों और नागों से भी नहीं डरते थे उन्हें आज मनुष्य ने मार डाला ।

१६. अवध्यो देवतानां यस्तथा दानवरक्षसाम् ।
हतः सोऽयं रणे शेते मानुषेण पदातिना ॥ युद्ध ११०।१५

देवता, दानव और राक्षस भी जिसे नहीं मार सकते थे वह एक पैदल मनुष्य के हाथ मारा जाकर युद्धभूमि में पड़ा सो रहा है ।

१७. लोकक्षोभायितारं च साधुभूतविदारणम् ।
ओजसा दृप्तवाक्यानां वक्तारं रिपुसन्निधौ ॥ युद्ध १११।५०

रावण ने समस्त संसार को डरा रखा था, सज्जनों की हत्या की थी और वह अपने शत्रुओं के सामने घमण्ड में अहंकारपूर्ण बातें करता था ।

१८. धर्मव्यवस्थाभेत्तारं मायास्त्रष्टारमाहवे ।
देवासुरनृकन्यानामाहर्तारं ततस्ततः ॥ युद्ध १११।५३

रावण धर्म की व्यवस्था तोड़ डालता था, युद्ध में मायावी सृष्टि की रचना कर देता था तथा जहां तहां से देवों, असुरों और मनुष्यों की कन्याओं का अपहरण कर लेता था ।

१९. यास्त्वया विधवा राजन् कृता नैकाः कुलस्त्रियः ॥
युद्ध १११।६४

पतिव्रता धर्मरता गुरुशुश्रूषणे रताः ।
ताभिः शोकाभितप्ताभिः शप्तः परवशं गतः ॥ युद्ध १११।६५
त्वया विप्रकृताभिश्च तदा शप्तस्तदागतम् ।

हे राक्षसराज ! तुमने ऐसी अनेक कुलीन स्त्रियों को विधवा बना दिया जो पतिव्रता थीं, धर्माचरण करती थीं और गुरुजनों की सेवा में लगी रहती थीं । इन स्त्रियों का तुमने अपमान भी किया था । इन शोकसंतप्त नारियों के शाप के कारण ही तुम मारे गये हो ।

२०. त्यक्तधर्मव्रतं क्रूरं नृशंसमनृतं तथा ।
नाहमर्हामि संस्कर्तुं परदाराभिमर्शनम् ॥ युद्ध १११।९३-९४

धर्माचरण छोड़ देने वाले, क्रूर, अत्याचारी, असत्यवादी और बलात्कार करने वाले अपने भाई रावण का मैं अन्तिम संस्कार करना उचित नहीं समझता ।

२१. **भ्रातृरूपो हि मे शत्रुरेष सर्वाहिते रतः ॥** युद्ध १११।९४

यह रावण भाई के रूप में मेरा शत्रु था और सब का अहित करता रहता था ।

राक्षस स्वभाव

१. **क्रीडारतिविधिज्ञानां समाजोत्सवदर्शिनाम् ।**
रक्षसां चैव सन्तापमनर्थं चाहरिष्यसि ॥ अरण्य ३८।२४

खेल तमाशों और भोग विलास में जीवन बिताने वाले और सामाजिक उत्सवों में अपना दिल बहलाने वाले राक्षसों के लिए तुम दुःख और अनर्थ ले आओगे ।

२. **स्वधर्मो रक्षसां भीरु सर्वदैव न संशयः ।**
गमनं वा परस्त्रीणां हरणं सम्प्रमथ्य च ॥ सुन्दर २०।५

अरी डरपोक ! परायी स्त्रियों से समागम और स्त्रियों का जबर्दस्ती अपहरण राक्षस सदा से करते आ रहे हैं ।

३. **यः खल्वपि वनं प्राप्य मृगव्यालनिषेवितम् ।**
न पिबेन्मधु सम्प्राप्य स नरो बालिशो भवेत् ॥ युद्ध १३।२

जो मनुष्य हिंसक पशुओं वाले जंगल में जाकर वहां पेड़ पर लगे शहद को नहीं पीता वह मूर्ख ही माना जायेगा ।

४. **प्रकृत्या राक्षसाः सर्वे संग्रामे कूटयोधिनः ॥** युद्ध ५०।५३

सारे राक्षसों का स्वभाव होता है कि वे छल कपट से युद्ध करते हैं ।

५. **नित्यं जिह्मा हि राक्षसाः ॥** युद्ध ५०।५४

राक्षस सदा कुटिल आचरण करते हैं ।

वानर स्वभाव

चपलाश्च ह्यविनीताश्च चलचित्ताश्च वानराः ॥ युद्ध ५७।९

बन्दर बड़े चंचल, ढीठ और डरपोक होते हैं ।

लक्ष्मण

१. **लोकपालाः समस्तास्ते नाद्य रामाभिषेचनम् ।**
न च कृत्स्नास्त्रयो लोका विहन्युः किं पुनः पिता ॥

अयोध्या २३।२१

इस संसार के सारे लोकपाल और तीनों लोकों के समस्त प्राणी भी आज राम का राज्याभिषेक नहीं रोक सकते, फिर पिता जी का तो कहना ही क्या ।

२. **यैर्विवासस्तवारण्ये मिथो राजन् समर्थितः ।**
अरण्ये ते विवस्यन्ति चतुर्दश समास्तथा ॥ अयोध्या २३।२२

हे राजन् ! जिन लोगों ने मिलकर आपको वनवास देने का समर्थन किया है उन सब को चौदह वर्षों तक जंगल में रहना पड़ेगा ।

३. **न शोभार्थाविमौ बाहू न धनुर्भूषणाय मे ।**
नासिराबन्धनार्थाय न शराः स्तम्भहेतवः ॥ अयोध्या २३।३०

मेरी दोनों भुजाएं केवल शोभा के लिए नहीं हैं और न ही मेरा धनुष मेरा आभूषण है । यह तलवार कमर में ही बंधी रहने के लिए नहीं है और मेरे तरकस में रखे बाण; खम्भा बनाने के काम नहीं आयेंगे।

४. **अहं तावन्महाराजे पितृत्वं नोपलक्षये ।**
भ्राता भर्ता च बन्धुश्च पिता च मम राघव ॥ अयोध्या ५८।३१

श्री राम को वनवास की आज्ञा देने के बाद मैं महाराज दशरथ को अपना पिता नहीं मानता । श्रीराम ही मेरे भाई, स्वामी तथा पिता हैं ।

५. **परवानस्मि काकुत्स्थ त्वयि वर्षशतं स्थिते ॥** अरण्य १५।७

हे राम ! मैं सदा आपके अधीन हूं और सैकड़ों वर्षों तक आपके अधीन ही रहना चाहता हूं ।

६. **भावज्ञेन कृतज्ञेन धर्मज्ञेन च लक्ष्मण ।**
त्वया पुत्रेण धर्मात्मा न संवृत्तः पिता मम ॥ अरण्य १५।२९

लक्ष्मण ! तुम मेरे मन की बात जान लेते हो, तुम धर्मज्ञ और कृतज्ञ हो । ऐसे धर्मात्मा पुत्र के कारण मेरे धर्मात्मा पिता मानो जीवित ही हैं ।

७. **अमर्षी दुर्जयो जेता विक्रान्तो बुद्धिमान् बली ॥** युद्ध २८।२४
रामस्य दक्षिणो बाहुर्नित्यं प्राणो बहिश्चरः ॥ अरण्य ३४।१४

लक्ष्मण बहुत पराक्रमी, दुर्जेय, विजयशील, असहिष्णु, बलशाली और मेधावी हैं । वे राम के दाहिने हाथ हैं और शरीर से बाहर दीखने वाले राम के मूर्तिमान् प्राण ही हैं ।

८. **बाल्यादनाश्रयाच्चैव लक्ष्मणस्त्वभिविव्यथे ॥** अरण्य ६९।३७

कबन्ध राक्षस की जकड़ में पड़कर लक्ष्मण बालबुद्धि के कारण तथा धैर्यवान् न होने से परेशान हो गये ।

९. **नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले ।**
नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात् ॥ किष् २२।२३

मैं न तो इन बाजूबन्दों को पहिचानता हूं और न ही कान की बालियों को । किन्तु प्रतिदिन सीता जी के चरणों में प्रणाम करने के कारण इन दोनों पायजेबों को पहिचानता हूं ।

१०. **स एष राघवभ्राता लक्ष्मणो वाक्यसारथिः ।**
व्यवसायरथः प्राप्तस्तस्य रामस्य शासनात् ॥ किष् ३१।४७

श्रीराम के भाई लक्ष्मण श्रीराम के आदेश से यहां आये हैं । श्रीराम की आदेशरूपी वाणी लक्ष्मण की सारथि है और कर्त्तव्य का दृढ़ निश्चय जिनका रथ है ।

११. एषो हि लक्ष्मणो नाम भ्रातुः प्रियहिते रतः ॥ युद्ध २८।२३

ये लक्ष्मण अपने भाई श्रीराम को अच्छा लगने वाले और हितकारी काम करने को उत्सुक रहते हैं ।

१२. न ह्येष राघवस्यार्थे जीवितं परिरक्षति ॥ युद्ध २८।२५

इन लक्ष्मण को श्रीराम के लिए अपने प्राणों की भी चिन्ता नहीं रहती ।

१३. शक्या सीतासमा नारी मर्त्यलोके विचिन्वता ।
न लक्ष्मणसमो भ्राता सचिवः साम्परायिकः ॥ युद्ध ४९।६

इस मनुष्य लोक में सीता जैसी नारी तो ढूंढने पर मिल सकती है किन्तु लक्ष्मण जैसा सहायक सलाहकार और युद्धकुशल भाई कहीं नहीं मिल सकता ।

१४. त्वं नित्यं सुविषण्णं मामाश्वासयसि लक्ष्मण ॥ युद्ध ४९।१३

लक्ष्मण ! तुम घोर निराशा और अवसाद में डूबे मुझ को सदा धैर्य बंधाते थे ।

१५. सुरुष्टेनापि वीरेण लक्ष्मणेन न संस्मरे ।
परुषं विप्रियं चापि श्रावितं तु कदाचन ॥ युद्ध ४९।१९

मुझे ऐसा कोई अवसर स्मरण नहीं आता जब बहुत क्रोध में भरे वीर लक्ष्मण ने मुझ से कोई अप्रिय या कठोर बात कही हो ।

१६. दृष्टपूर्वं न ते रूपं पादौ दृष्टौ तवानघे ।
कथमत्र हि पश्यामि रामेण रहितां वने ॥ उत्तर ४८।२१, २२

हे निष्पाप सीते ! मैंने पहले कभी भी आपका सौन्दर्य नहीं देखा है, केवल आपके चरण ही देखे हैं । फिर आज वन में राम से बिछुड़ी हुई आपको मैं कैसे देख सकता हूं ।

१७. एकस्य मरणं मेऽस्तु मा भूत् सर्वविनाशनम् ॥ उत्तर १०५।९

मुझ अकेले की मृत्यु हो जाय किन्तु सब का विनाश नहीं होना

चाहिए ।

१८. यदि प्रीतिर्महाराज यद्यनुग्राह्यता मयि ।
जहि मां निर्विशङ्कस्त्वं धर्मं वर्धय राघव ॥ उत्तर १०६।४

हे राम ! यदि आप मुझ से स्नेह करते हैं और यदि मुझ पर आपका अनुग्रह है तो आप मुझे निश्शंक होकर प्राणदण्ड दें और धर्म की वृद्धि करें ।

वर्षा वर्णन

१. नवमासधृतं गर्भं भास्करस्य गभस्तिभिः ।
पीत्वा रसं समुद्राणां द्यौः प्रसूते रसायनम् ॥ किष्किन्धा २८।३

यह आकाश, तरुणी स्त्री है जिसने सूर्य की किरणों के द्वारा समुद्रों का जल पीकर नौ मास तक उस जल को अपने गर्भ में धारण किया है । वर्षा ऋतु आने पर यह तरुणी अपने गर्भ में बने रसायन को पृथ्वी को दे रही है ।

२. एषा घर्मपरिक्लिष्टा नववारिपरिप्लुता ।
सीतेव शोकसन्तप्ता मही वाष्पं विमुञ्चति ॥ किष्किन्धा २८।७

ग्रीष्मऋतु में सूर्य की गरमी से तपी हुई पृथिवी वर्षा के नये जल से भीगकर शोकसंतप्त सीता की भांति रो रही है ।

३. मेघोदरविनिर्मुक्ताः कर्पूरदलशीतलाः ।
शक्यमञ्जलिभिः पातुं वाताः केतकगन्धिनः ॥ किष् २८।८

बादलों के बीच से निकली हुई कपूर की डली जैसी शीतल और केवड़े की गन्ध से सुरभित जरसाती वायु को अञ्जलियों में भरकर पीया जा सकता है ।

४. **मेघकृष्णाजिनधरा धारायज्ञोपवीतिनः ।**
मारुतापूरितगुहाः प्राधीता इव पर्वताः ॥ किष्किन्धा २८।१०

पर्वतों से लिपटे हुए बादलों से ऐसा लगता है कि पहाड़ों ने वेदपाठी ब्रह्मचारियों की भांति कृष्णमृगचर्म पहिन रखा है और वर्षा की धाराएं पर्वतों के यज्ञोपवीत बन गई हैं । पर्वतों की गुफाओं से सनसनाती वायु निकल रही है । इस प्रकार पर्वत भी वेदपाठ करने लगे हैं ।

५. **कशाभिरिव हैमीभिर्विद्युद्भिरभिताडितम् ।**
अन्तःस्तनितनिर्घोषं सवेदनमिवाम्बरम् ॥ किष्किन्धा २८।११

बादलों में चमकती बिजली सोने की चाबुक जैसी दीखती है । बिजली की चमक और बादलों की गड़गड़ाहट सुन ऐसा लगता है कि चाबुक की मार खाकर आकाश चीत्कार कर रहा है ।

६. **नीलमेघाश्रिता विद्युत् स्फुरन्ती प्रतिभाति मे ।**
स्फुरन्ती रावणस्याङ्के वैदेहीव तपस्विनी ॥ किष्किन्धा २८।१२

काले-काले बादलों में चमकती हुई बिजली ऐसी लगती है मानो रावण की गोद में से निकल भागने के लिए तपस्विनी सीता छटपटा रही हो ।

७. **रजः प्रशान्तं सहिमोऽद्य वायुर्निदाघदोषप्रसराः प्रशान्ताः।**
स्थिता हि यात्रा वसुधाधिपानां प्रवासिनो यान्ति नराः स्वदेशान्॥
किष्किन्धा २८।१५

धूल भरी आंधियां बन्द हो गई हैं, शीतल पवन बहने लगा है, गर्मी की परेशानियां समाप्त हो गई हैं । राजाओं की युद्धयात्राएं रुक गई हैं और परदेशी स्वदेश लौटने लगे हैं ।

८. **अभीक्ष्णवर्षोदकविक्षतेषु यानानि मार्गेषु न सम्पतन्ति ॥**
किष्किन्धा २८।१६

निरन्तर वर्षा से सड़कें टूट-फूट गई हैं अतः उन पर गाड़ियां नहीं चल पा रही हैं ।

९. क्वचित् प्रकाशं क्वचिदप्रकाशं नभः प्रकीर्णाम्बुधरं विभाति॥

किष्किन्धा २८।१७

आकाश में इधर-उधर बादल छिटके होने से कहीं तो आकाश दिखाई देता है और कहीं बादलों से ढका हुआ है । आकाश उस महासागर की भांति दिखाई दे रहा है जो कहीं पर्वत की ओट से नहीं दीखता और जहां पर्वत नहीं होते वहां शान्तमहासागर दिखाई पड़ता है ।

१०. व्यामिश्रितं सर्जकदम्बपुष्पैर्नवं जलं पर्वतधातुताम्रम् ।
मयूरकेकाभिरनुप्रयातं शैलापगाः शीघ्रतरं वहन्ति ॥

किष्किन्धा २८।१८

वर्षा ऋतु में पहाड़ी नदियों का प्रवाह तीव्र हो गया है । इनमें साल और कदम्ब के फूलों तथा पर्वत की गेरु आदि धातुओं के घुलने से लाल पानी कलकल करता बह रहा है । मोरों की केका ध्वनि पानी की कलकल ध्वनि का साथ दे रही है ।

११. रसाकुलं षट्पदसन्निकाशं प्रभुज्यते जम्बुफलं प्रकामम् ।
अनेकवर्णं पवनावधूतं भूमौ पतत्याम्रफलं विपक्वम् ॥

किष्किन्धा २८।१९

काले भौंरे जैसी रसीली जामुनों को वर्षा ऋतु में लोग जी भरकर खाते हैं । हवा के झोंकों से तरह तरह के रंगों वाले पके आम पृथ्वी पर टपक रहे हैं ।

१२. विद्युत्पताकाः सबलाकमालाः शैलेन्द्रकूटाकृतिसन्निकाशाः।
गर्जन्ति मेघाः समुदीर्णनादा मत्ता गजेन्द्रा इव संयुगस्थाः॥

किष्किन्धा २८।२०

जैसे युद्ध के मैदान में मतवाले हाथी चिंघाड़ते हैं उसी प्रकार पर्वत शिखरों जैसे बादल गरज रहे हैं । चमकती हुई बिजलियां इन मेघरूपी हाथियों की पताकाओं जैसी फहरा रही हैं और बगुलों की पंक्तियां इन मेघों के गले में माला जैसी दीख रही हैं ।

१३. वर्षोदकाप्यायितशाद्वलानि प्रवृत्तनृत्तोत्सवबर्हिणानि ।
वनानि निर्वृष्टबलाहकानि पश्यापराह्णेष्वधिकं विभान्ति ॥

किष्किन्धा २८।२१

देखो तीसरे पहर में इन वनों की शोभा निराली है । वर्षाजल से मैदानों में हरी घास छा गई है, मोरों के झुण्ड इन मैदानों में नाच रहे हैं और पानी बरसाकर बादल आकाश में तैर रहे हैं ।

१४. समुद्वहन्तः सलिलातिभारं बलाकिनो वारिधरा नदन्तः ।
महत्सु शृंगेषु महीधराणां विश्रम्य विश्रम्य पुनः प्रयान्ति ॥

किष्किन्धा २८।२२

उड़ते हुए बगुलों की पंक्तियों से शोभायमान अत्यधिक जल का भार ढोते हुए और गरजते हुए बादल पर्वतों की ऊंची चोटियों पर आराम कर आगे बढ़ते जा रहे हैं ।

१५. मेघाभिकामा परिसम्पतन्ती सम्मोदिता भाति बलाकपंक्तिः ।
वातावधूता वरपौण्डरीकी लम्बेव मालारुचिराम्बरस्य ॥

किष्किन्धा २८।२३

गर्भधारण करने के लिए मेघों के साथ उड़ने को उत्कण्ठित आनन्दमग्न बगुलों की पंक्ति आकाश के गले में पड़ी सुन्दर सफेद कमलों की लहराती हुई माला जैसी दिखाई देती है ।

१६. निद्रा शनैः केशवमभ्युपैति द्रुतं नदी सागरमभ्युपैति ।
हृष्टा बलाका घनमभ्युपैति कान्ता सकामा प्रियमभ्युपैति ॥

किष्किन्धा २८।२५

वर्षा ऋतु के आरम्भ में निद्रा भगवान् विष्णु के समीप जाने लगी है, वेगवती नदी सागर से मिलने के लिए आतुर हो उठी है, आनन्दित बगुलों की पंक्तियां बादलों में उड़ती फिर रही हैं और कामातुर नारियां अपने प्रियतमों के पास जा रही हैं ।

१७. जाता वनान्ताः शिखिसुप्रनृत्ता जाताः कदम्बाः सकदम्बशाखाः।
जाता वृषा गोषु समानकामा जाता मही सस्यवनाभिरामा॥

किष्किन्धा २८।२६

जंगलों के छोर मोरों के नृत्य से सुशोभित हो गये हैं । कदम्ब वृक्ष फूलों और पत्तों से लद गये हैं । सांड गौओं के प्रति आसक्त हो गये हैं और पृथ्वी हरे भरे खेतों और वनों से शोभा पा रही है । बादलों की गरज से कदम्ब की कलियां खिल जाती हैं ।

१८. वहन्ति वर्षन्ति नदन्ति भान्ति ध्यायन्ति नृत्यन्ति समाश्वसन्ति।
नद्यो घना मत्तगजा वनान्ता प्रियाविहीनाः शिखिनः प्लवङ्गमाः॥

किष्किन्धा २८।२७

वर्षा जल से भरपूर नदियां बह रही हैं, बादल बरस रहे हैं, वनों के छोर सुन्दर लग रहे हैं, विरही प्राणी प्रेयसी की याद कर रहे हैं, मोर नाच रहे हैं और बन्दर निश्चिन्त हो सुखी बैठे हैं ।

१९. अङ्गारचूर्णोत्कर सन्निकाशैः फलैः सुपर्याप्तरसैः समृद्धैः।
जम्बूद्रुमाणां प्रविभान्ति शाखा निपीयमाना इव षट्पदौघैः॥

किष्किन्धा २८।३०

कोयले के चूरे जैसी काली और रसीली जामुनों से लदी पेड़ों की शाखाएं ऐसी लग रही हैं मानो इन शाखाओं से चिपटकर भौंरे रस पी रहे हैं ।

२०. मार्गानुगः शैलवनानुसारी सम्प्रस्थितो मेघरवं निशम्य ।
युद्धाभिकामः प्रतिनादशङ्की मत्तो गजेन्द्रः प्रतिसन्निवृत्तः॥

किष्किन्धा २८।३२

पर्वतों के जंगलों में घूमने वाला और अपने प्रतिद्वन्द्वी से लड़ने का इच्छुक मदमस्त हाथी बादल की गरज को दूसरे हाथी की ललकार समझकर सहसा पीछे लौट पड़ा ।

२१. क्वचित् प्रगीता इव षट्पदौघैः क्वचित् प्रनृत्ता इव नीलकण्ठैः।
क्वचित् प्रमत्ता इव वारणेन्द्रैर्विभान्त्यनेकाश्रयिणो वनान्ताः॥

किष्किन्धा २८।३३

जंगलों में कहीं भौंरे गुंजार रहे हैं, कहीं मोर नाच रहे हैं, कहीं मतवाले हाथी झूम रहे हैं, जंगलों में तरह तरह के सुन्दर दृश्य दिखाई

दे रहे हैं ।

२२. कदम्बसर्जार्जुनकन्दलाढ्या वनान्तभूमिर्मधुवारिपूर्णा ।
मयूरमत्ताभिरुतप्रनृत्तैरापानभूमिप्रतिमा विभाति ॥

किष्किन्धा २८।३४

कदम्ब, साल, अर्जुन और केले के फूलों के रस और पराग से परिपूर्ण वर्षाजल जंगलों में जगह जगह इकट्ठा होकर मदिरा बन गया है । वर्षा ऋतु के आगमन से प्रसन्न होकर मोर नाच और गा रहे हैं। ऐसा लगता है कि जंगलों में मधुशालाएं खुल गई हैं ।

२३. षट्पादतन्त्रीमधुराभिधानं प्लवङ्गमोदीरितकण्ठतालम् ।
आविष्कृतं मेघमृदङ्गनादैर्वनेषु सङ्गीतमिव प्रवृत्तम् ॥

किष्किन्धा २८।३६

भौंरों की गुंजार मानो वीणा की मधुर झंकार है, मेंढकों का टर्राना मानो ताल देना है । बादलों की गरज मानो तबले की आवाज है इस तरह वनों में संगीतोत्सव आरम्भ हो गया है ।

२४. क्वचित् प्रनृत्तैः क्वचिदुन्नदद्भिः क्वचिच्च वृक्षाग्रनिषण्णकायैः।
व्यालम्बबर्हाभरणैर्मयूरैर्वनेषु सङ्गीतमिव प्रवृत्तम् ॥

किष्किन्धा २८।३७

मोर, वनों में कहीं अपने लम्बे लम्बे पंख फैलाकर नाच रहे हैं, कहीं जोर जोर से बोल रहे हैं और कहीं पेड़ों की डाल पर बैठे हैं । इस प्रकार मोरों ने संगीतोत्सव प्रारम्भ कर दिया है ।

२५. स्वनैर्घनानां प्लवगाः प्रबुद्धा विहाय निद्रां चिरसन्निरुद्धाम् ।
अनेकरूपाकृतिवर्णनादा नवाम्बुधाराभिहिता नदन्ति ॥

किष्किन्धा २८।३८

मेघों की गरज से अपनी लम्बी नींद से जगे नाना रूपों, रंगों और आकृतियों वाले मेंढक नये वर्षाजल से नहाकर टर्रा रहे हैं ।

२६. प्रमत्तसन्नादित बर्हिणानि सशक्रगोपाकुलशाद्वलानि ।
चरन्ति नीपार्जुनवासितानि गजाः सुरम्याणि वनान्तराणि ॥

किष्किन्धा २८।४१

मतवाले मोर शोर मचा रहे हैं, हरी घास के मैदानों में वीर बहूटियां घूम रही हैं और अर्जुन तथा कदम्ब के फूलों से सुवासित वनों में हाथी घूम रहे हैं ।

२७. नवाम्बुधाराहतकेसराणि द्रुतं परित्यज्य सरोरुहाणि ।
कदम्बपुष्पाणि सकेसराणि नवानि हृष्टा भ्रमराः पिबन्ति ॥

किष्किन्धा २८।४२

नये वर्षा जल की धाराओं से कमल-पुष्पों का केसर बह गया है अतः भौंरे इन्हें छोड़कर नये खिले कदम्ब के फूलों का केसर खुशी खुशी पी रहे हैं ।

२८. मत्ता गजेन्द्रा मुदिता गवेन्द्रा वनेषु विक्रान्ततरा मृगेन्द्राः।
रम्या नगेन्द्रा निभृता नरेन्द्राः प्रक्रीडितो वारिधरैः सुरेन्द्रः॥

किष्किन्धा २८।४३

हाथी मतवाले हैं, साण्ड प्रसन्न हैं, जंगलों में शेर खूब पराक्रम प्रकट कर रहे हैं, पर्वत सुन्दर लग रहे हैं, राजा चुपचाप बैठे हैं, इन्द्र बादलों से खेल रहे हैं ।

२९. मेघाः समुद्भूतसमुद्रनादा महाजलौघैर्गगनावलम्बाः ।
नदीस्तटाकानि सरांसि वापीर्महीं च कृत्स्नामपवाहयन्ति ॥

किष्किन्धा २८।४४

अत्यधिक पानी से भरे आकाश में लटके हुए बादल समुद्र की भांति गरज रहे हैं और नदी, तालाब, सरोवर, बावड़ी और सारी पृथ्वी को पानी से भर रहे हैं ।

३०. वर्षप्रवेगा विपुलाः पतन्ति प्रवान्ति वाताः समुदीर्णवेगाः।
प्रणष्टकूलाः प्रवहन्ति शीघ्रं नद्यो जलं विप्रतिपन्नमार्गाः॥

किष्किन्धा २८।४५

बादल जोर से बरस रहे हैं, तेज आंधियां चल रही हैं, नदियां अपने किनारे तोड़ कर बड़ी तेजी से बह रही हैं । बाढ़ ने रास्ते रोक दिये हैं ।

३१. नरैर्नरेन्द्रा इव पर्वतेन्द्राः सुरैन्द्रदत्तैः पवनोपनीतैः ।
घनाम्बुकुम्भैरभिषिच्यमाना रूपं श्रियं स्वामिव दर्शयन्ति ॥

किष्किन्धा २८।४६

जिस प्रकार मनुष्य कलशों से अपने राजाओं का अभिषेक करते हैं उसी प्रकार इन्द्र से दिये गये और वायु से लाये गये मेघरूपी कलशों से नहा कर पर्वत अपनी शोभा दिखा रहे हैं ।

३२. घनोपगूढं गगनं न तारा न भास्करो दर्शनमभ्युपैति ।
नवैर्जलौघैर्धरणी वितृप्ता तमोविलिप्ता न दिशः प्रकाशाः ॥

किष्किन्धा २८।४७

बादलों से घिरे आकाश में न तो तारे और न ही सूर्य दिखाई देता है । नये वर्षा जल से पृथ्वी तृप्त हो गई है और घने अन्धकार में डूबी दिशाएं दिखाई नहीं देतीं ।

३३. महान्ति कूटानि महीधराणां धाराविधौतान्यधिकं विभान्ति।
महाप्रमाणैर्विपुलैः प्रपातैर्मुक्ताकलापैरिव लम्बमानैः॥

किष्किन्धा २८।४८

पर्वतों के बड़े बड़े शिखर वर्षा जल की धाराओं से अच्छी तरह धुल कर साफ हो गये हैं । इन चोटियों से गिरते हुए विशाल झरनों का पानी मोतियों की बड़ी माला जैसा दिखाई देता है । इन झरनों के कारण पर्वत शिखर बहुत सुन्दर दिखाई दे रहे हैं ।

३४. शैलोपलप्रस्खलमानवेगाः शैलोत्तमानां विपुलाः प्रपाताः ।
गुहासु सन्नादितबर्हिणासु हारा विकीर्यन्त इवावभान्ति ॥

किष्किन्धा २८।४९

विशाल पर्वतों में बहते हुए बड़े बड़े झरनों के पानी का वेग चट्टानों पर गिरने के कारण रुक गया है । भौंरों की आवाज से गुहाएं गूंज रही हैं । ऐसा लगता है कि मोतियों के हार टूट कर बिखर रहे हैं ।

३५. शीघ्रप्रवेगा विपुलाः प्रपाता निर्धौतशृङ्गोपतला गिरीणाम् ।
मुक्ताकलापप्रतिमाः पतन्तो महागुहोत्सङ्गतलैर्ध्रियन्ते ॥

किष्किन्धा २८।५०

वेग से बहते अनेक झरनों ने पर्वत-शिखरों के निचले भागों को भी धो दिया है । इन झरनों के मोतियों जैसे पानी को बड़ी बड़ी गुफाएं अपनी गोद में ले रही हैं ।

३६. सुरतामर्दविच्छिन्नाः स्वर्गस्त्रीहारमौक्तिकाः ।
पतन्ति चातुला दिक्षु तोयधाराः समन्ततः ॥ किष् २८।५१

सुरत क्रीड़ा के समय अंगों को दबाने से देवांगनाओं के टूटे हुए हारों के मोतियों की भांति अत्यधिक वर्षाजल की धाराएं चारों ओर गिर रही हैं ।

३७. विलीयमानैर्विहगैर्निमीलद्भिश्च पङ्कजैः ।
विकसन्त्या च मालत्या गतोऽस्तं ज्ञायते रविः ॥ किष् २८।५२

वर्षा के कारण पक्षी घोंसलों में बैठे हैं, कमलपुष्प बन्द होने लगे हैं और कुमुदिनियों के फूल खिलने लगे हैं । इन्हें देख लगता है कि सूर्यास्त हो गया है ।

३८. वृत्ता यात्रा नरेन्द्राणां सेना पथ्येव वर्तते ।
वैराणि चैव मार्गाश्च सलिलेन समीकृताः ॥ किष् २८।५३

राजाओं की विजय यात्रा रुक गई है, सेना भी रास्ते में पड़ाव डाले पड़ी है । वर्षा जल ने राजाओं के आपसी वैर और रास्तों को रोक दिया है ।

३९. मासि प्रौष्ठपदे ब्रह्म ब्राह्मणानां विवक्षताम् ।
अयमध्यायसमयः सामगानामुपस्थितः ॥ किष्किन्धा २८।५४

भाद्रपद का मास आ गया है । वेदों का स्वाध्याय करना चाहने वाले ब्राह्मणों के लिए उपाकर्म, अनुष्ठान का समय भी आ गया है तथा सामगान करने वाले विद्वानों के लिए भी स्वाध्याय करने का समय आ गया है ।

वसन्त की रात्रि

वासन्तिकी निशा प्राप्ता न शीता न च घर्मदा ॥ उत्तर ६०।१

वसन्त ऋतु की रात्रि आ गई है जिसमें न तो ठण्ड लगती है और न ही गर्मी ।

विभीषण

१. **न रमे दारुणेनाहं न चाधर्मेण वै रमे ।**
भ्रात्रा विषमशीलोऽपि कथं भ्राता निरस्यते ॥ युद्ध ८७।२०

मुझे क्रूर कर्म अच्छा नहीं लगता, न ही मैं धर्मविरुद्ध काम करता हूं । अपने भाई से मेरा स्वभाव नहीं मिलता, फिर भी बड़ा भाई छोटे भाई को घर से कैसे निकाल सकता है ।

२. **अतीतानागतार्थज्ञो वर्त्तमानविचक्षणः ॥** युद्ध १११।७०
मैथिलीमाहृतां दृष्ट्वा निःश्वस्य चायतम् ।
सत्यवाक् स महाबाहो देवरो मे यदब्रवीत् ॥ युद्ध १११।७१
अयं राक्षसमुख्यानां विनाशः प्रत्युपस्थितः ।

महाबाहो ! मेरे देवर विभीषण सत्यवादी, भूत और भविष्य का हाल जानने वाले और वर्त्तमान समय को भी समझने में कुशल हैं । उन्होंने अपहरण कर लाई गई सीता को देखकर लम्बी सांस भरकर कहा था कि अब मुख्य मुख्य राक्षसों के विनाश का काल आ गया है ।

३. **परमापद्गतस्यापि धर्मे मम मतिर्भवेत् ॥** उत्तर १०।३०

घोर संकट आने पर भी मेरी बुद्धि धर्माचरण से विचलित न हो।

४. **विभीषणस्तु धर्मात्मा नित्यं धर्मव्यवस्थितः ।**
स्वाध्यायनियताहार उवास विजितेन्द्रियः ॥ उत्तर ९।३९

विभीषण बचपन से ही धर्मात्मा थे । वे सदा स्वाध्याय करते, थोड़ा और नियमित भोजन करते, अपनी इन्द्रियों को वश में रखते और धर्म का पालन करते थे ।

विवेक—वैराग्य

१. **वयसः पतमानस्य स्त्रोतसो वानिवर्तिनः ।**
आत्मा सुखे नियोक्तव्यः सुखभाजः प्रजाः स्मृताः ॥
अयोध्या १०५।३१

जैसे नदी का प्रवाह पीछे नहीं लौटता उसी प्रकार ढलती हुई आयु वापस नहीं आती, इसीलिए आत्मा को अपने कल्याण के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए, क्योंकि सभी लोग अपना कल्याण चाहते हैं ।

२. **धार्मिकेणानृशंसेन नरेण गुरुवर्तिना ।**
भवितव्यं नरव्याघ्र परलोकं जिगीषता ।। अयोध्या १०५।४४

हे नरोत्तम ! परलोक के विजय की इच्छा वाले मनुष्य को धार्मिक, क्रूरता रहित और अपने से बड़ों की आज्ञा का पालक होना चाहिए ।

३. **यथा मृतस्तथा जीवन् यथा सति तथासति ।**
यस्यैष बुद्धिलाभः स्यात् परितप्येत केन सः ।। अयोध्या १०६।४

विवेक से युक्त बुद्धि वाला मनुष्य अपने शरीर से कोई आसक्ति नहीं रखता । इसीलिए उसे शरीर के जीवित रहने या देहान्त हो जाने पर अथवा किसी वस्तु के मिलने या खो जाने पर कोई सुख या दुख नहीं सताता ।

४. **एवमेव मनुष्याणां पिता माता गृहं वसु ।**
आवासमात्रं काकुत्स्थ सज्जन्ते नात्र सज्जनाः ।। अयोध्या १०८।६

माता, पिता, घर और धन, मनुष्यों के आश्रयमात्र हैं । ककुत्स्थकुलभूषण राम ! सत्पुरुष इन सांसारिक पदार्थों में तनिक भी लगाव नहीं रखते ।

५. **सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः ।**
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम् ।। अयो.१०५।१६

सब तरह के संग्रह नष्ट हो जाते हैं, सांसारिक उन्नति के बाद पतन भी अवश्यम्भावी है । मिलन का परिणाम वियोग विरह होता है और जीवन की मृत्यु में परिणति होती है ।

६. **यो हि दत्त्वा द्विपश्रेष्ठं कक्ष्यायां कुरुते मनः ।**
रज्जुस्नेहेन किं तस्य त्यजतः कुञ्जरोत्तमम् ।। अयोध्या ३७।३

जो मनुष्य अच्छे हाथी का दान कर उसका रस्सा रख लेना चाहता

है तो ऐसे व्यक्ति का रस्से से लगाव भी व्यर्थ ही होता है ।

७. **त्रीणि द्वन्द्वानि भूतेषु प्रवृत्तान्यविशेषतः ।**
तेषु चापरिहार्येषु नैवं भवितुमर्हसि ॥ अयोध्या ७७।२३

भूख-प्यास, शोक-मोह और जरा-मृत्यु ये तीन द्वन्द्व सभी प्राणियों को सताते हैं । इन्हें रोकना असम्भव है । इसलिए मनुष्य को विपरीत परिस्थितियों में शोकाकुल नहीं होना चाहिए ।

८. **स्मृत्वा वियोगजं दुःखं त्यज स्नेहं प्रिये जने ।**
अतिस्नेहपरिष्वङ्गाद् वर्त्तिरार्द्रापि दह्यते ॥ किष्किन्धा १।११६

आत्मीय जनों के वियोग से दुःख होता है यह तथ्य ध्यान में रखकर अपने प्रिय जनों से अधिक स्नेह नहीं करना चाहिए । अत्यधिक स्नेह (तेल) में डुबो देने पर पानी से गीली हुई दिये की बत्ती भी जलने लगती है ।

९. **वन्येन फलमूलेन निरतौ वनवासिनौ ।**
सुवर्णेन हिरण्येन किं करिष्यावहे वने ॥ उत्तर ९४।२१

हम दोनों जंगल में रहकर वन में उपजे फल और कन्द-मूल खाकर अपना निर्वाह करते हैं । वन में सोना चांदी ले जाकर क्या करेंगे?

वीर पुरुष

१. **अधर्षितानां शूराणां समरेष्वनिवर्तिनाम् ।**
धर्षणामर्षणं भीरु मरणादतिरिच्यते ॥ किष् १६।३

हे डरपोक ! जो वीर कभी नहीं हारे और जिन्होंने युद्ध में कभी पीठ नहीं दिखाई उनके लिए शत्रु की ललकार सहन करना मृत्यु से भी बढ़कर दुःखदायी होता है ।

२. **उपकारेण वीरो हि प्रतीकारेण युज्यते ।**
अकृतज्ञोऽप्रतिकृतो हन्ति सत्त्ववतां मनः ॥ किष् २८।६४

वीर पुरुष उपकार करने वाले मनुष्य की बदले में भलाई करते हैं, किन्तु जो व्यक्ति उपकार को भुलाकर बदले में उपकार नहीं करता

उसके आचरण से सज्जन प्रसन्न नहीं होते ।

३. **कोपमार्येण यो हन्ति स वीरः पुरुषोत्तमः ॥** किष् ३१।६

जो व्यक्ति अपने विवेक से क्रोध पर विजय प्राप्त कर लेता है वही वीर और श्रेष्ठ पुरुष होता है ।

४. **गर्जन्ति न वृथा शूरा निर्जला इव तोयदाः ॥** युद्ध ६५।३

शूरवीर पुरुष जलरहित बादलों की भांति व्यर्थ ही नहीं गरजते हैं।

५. **न मर्षयन्ति चात्मानं सम्भाववयितुमात्मना ।**
अदर्शयित्वा शूरास्तु कर्म कुर्वन्ति दुष्करम् ॥ युद्ध ६५।४

वीर पुरुषों को अपने मुंह से अपनी प्रशंसा करना अच्छा नहीं लगता। वे शेखी बघारे बिना कठिन से कठिन काम कर डालते हैं ।

वैर

मरणान्तानि वैराणि ॥ युद्ध १०९।२५

किसी व्यक्ति के मर जाने के साथ ही उससे शत्रुता भी समाप्त हो जाती है ।

शरद् वर्णन

१. **विमलग्रहनक्षत्रा शारदी द्यौरिवेन्दुना ॥** अयोध्या ३।३७

शरद् ऋतु में बादलों से रहित आकाश में चमकते हुए तारों और ग्रहों के बीच चन्द्रमा बहुत सुन्दर दिखाई देता है ।

२. **समीक्ष्य विमलं व्योम गतविद्युद्बलाहकम् ।**
सारसाकुलसङ्घुष्टं रम्यज्योत्स्नानुलेपनम् ॥ किष्किन्धा २९।१

शरत् काल प्रारम्भ होने पर आकाश साफ हो गया है, अब बादल नहीं दिखाई देते और बिजली नहीं चमकती । उड़ते हुए सारसों की आवाज

सुनाई देती है और चन्द्रमा के उदय होने पर लगता है कि आकाश पर चांदनी का लेप कर दिया है ।

३. **दीर्घगम्भीरनिर्घोषाः शैलद्रुमपुरोगमाः ।**
विसृज्य सलिलं मेघाः परिशान्ता नृपात्मज ॥ किष् ३०।२३

राजकुमार ! अत्यधिक गम्भीर स्वर से गरजने वाले और पर्वतों तथा वृक्षों के ऊपर से उड़ने वाले बादल पानी बरसा कर शान्त हो गये हैं ।

४. **नीलोत्पलदलश्यामाः श्यामीकृत्वा दिशो दश ।**
विमदा इव मातङ्गाः शान्तवेगाः पयोधराः ॥ किष् ३०।२४

नीलकमल के पत्तों जैसे काले बादल दसों दिशाओं को अन्धकारपूर्ण करके अब शरद् ऋतु में मदरहित हाथियों की तरह शान्त हो गये हैं ।

५. **जलगर्भा महावेगाः कुटजार्जुनगन्धिनः ।**
चरित्वा विरताः सौम्य वृष्टिवाताः समुद्यताः ॥ किष् ३०।२५

जल से भरे कुटज और अर्जुन के फूलों की गन्ध से परिपूर्ण वर्षाकाल के वेगशाली झंझावात उमड़ घुमड़ कर और सभी दिशाओं में घूमकर शान्त हो गये ।

६. **घनानां वारणानां च मयूराणां च लक्ष्मण ।**
नादः प्रस्त्रवणानां च प्रशान्तः सहसानघ ॥ किष्किन्धा ३०।२६

हे निष्पाप लक्ष्मण ! शरद् ऋतु आते ही बादलों, हाथियों, मोरों और झरनों का शोर सहसा थम गया है ।

७. **अभिवृष्टा महामेघैर्निर्मलाश्चित्रसानवः ।**
अनुलिप्ता इवाभान्ति गिरयश्चन्द्ररश्मिभिः ॥ किष् ३०।२७

विशाल बादलों के जल से धुले हुए पर्वतों के विचित्र शिखर अत्यन्त निर्मल हो गये हैं । चन्द्रमा की चांदनी में ये शिखर ऐसे लगते हैं मानो इन पर चांदनी का लेप कर दिया गया हो ।

**८. शाखासु सप्तच्छदपादपानां प्रभासु तारार्कनिशाकराणाम् ।
लीलासु चोत्तमवारणानां श्रियं विभाज्याद्य शरत्प्रवृत्ता ॥**

किष्किन्धा ३०।२८

छितवन की शाखाओं में, तारों, सूर्य और चन्द्रमा में तथा उत्तम हाथियों की लीलाओं में आज शरद् ऋतु अपनी प्रभा बांटकर आ गई है ।

**९. सप्तच्छदानां कुसुमोपगन्धी षट्पादवृन्दैरनुगीयमानः ।
मत्तद्विपानां पवनानुसारी दर्पं विनेष्यन्नधिकं विभाति ॥**

किष्किन्धा ३०।३०

छितवन के फूलों की सुगन्ध से परिपूर्ण वायु का अनुसरण करने वाला, भौंरों द्वारा स्तुति किया जाता हुआ और मदमस्त हाथियों का घमण्ड बढ़ाने वाला शरत्-काल खूब अच्छा लग रहा है ।

**१०. अभ्यागतैश्चारुविशालपक्षैः स्मरप्रियैः पद्मरजोऽवकीर्णैः ।
महानदीनां पुलिनोपयातैः क्रीडन्ति हंसाः सह चक्रवाकैः ॥**

किष्किन्धा ३०।३१

सुन्दर और विशाल पंखों वाले, कमल के पराग से नहाये हुए, कामासक्त हंस अपने साथ आये हुए चकवों के साथ बड़ी नदियों के तटों पर खेल रहे हैं ।

**११. मदप्रगल्भेषु च वारणेषु गवां समूहेषु च दर्पितेषु ।
प्रसन्नतोयासु च निम्नगासु विभाति लक्ष्मीर्बहुधा विभक्ता ॥**

किष्किन्धा ३०।३२

मदमस्त हाथियों में, गर्व से भरे साण्डों के झुण्डों में तथा साफ पानी वाली नदियों में नानाविध छायी हुई शरत् काल की छटा सुन्दर लग रही है ।

**१२. नभः समीक्ष्याम्बुधरैर्विमुक्त विमुक्तबर्हाभरणा वनेषु ।
प्रियास्वरक्ता विनिवृत्तशोभा गतोत्सवा ध्यानपरा मयूराः॥**

किष्किन्धा ३०।३३

आकाश में बादल न देखकर अपने आभूषण पंखों को गिराकर शोभाहीन और आनन्दरहित मोर अपनी प्रेयसी से विरक्त होकर शरद् ऋतु में मानो ध्यानमग्न हो गये हैं ।

१३. प्रियान्वितानां नलिनीप्रियाणां वने प्रियाणां कुसुमोद्गतानाम्।
मदोत्कराणां मदलालसानां गजोत्तमानां गतयोऽद्यमन्दाः॥

किष्किन्धा ३०।३५

अपनी प्रेयसियों के साथ घूमने वाले, कमलिनियों के फूलों और वन में खिले फूलों को पसन्द करने वाले मदमस्त और कामातुर हाथियों की चाल अब धीमी हो गई है ।

१४. व्यक्तं नभः शस्त्रविधौतवर्णं कृशप्रवाहानि नदीजलानि ।
कल्हारशीताः पवनाः प्रवान्ति तमो विमुक्ताश्च दिशः प्रकाशाः॥

किष्किन्धा ३०।३६

शरद् ऋतु में आकाश चमचमाते हुए हथियार जैसा चमक रहा है, नदियों का पानी घट गया है, सफेद कमल की सुगन्ध से भरा शीतल मन्द पवन बह रहा है और दिशाओं का अन्धेरा मिट गया है ।

१५. सूर्यातपक्रामणनष्टपङ्का भूमिश्चिरोद्घाटितसान्द्ररेणुः ।
अन्योन्यवैरेण समायुतानामुद्योगकालोऽद्य नराधिपानाम् ॥

किष्किन्धा ३०।३७

धूप की गर्मी से कीचड़ सूख गई है, पृथ्वी पर खूब धूल दिखाई देने लगी है और एक दूसरे के शत्रु राजाओं का आपस में लड़ने का समय आ गया है ।

१६. शरद्गुणाप्यायितरूपशोभाः प्रहर्षिताः पांसुसमुत्थिताङ्गाः।
मदोत्कटाः सम्प्रति युद्धलुब्धा वृषा गवां मध्यगता नदन्ति॥

किष्किन्धा ३०।३८

शरद् ऋतु के कारण अपनी शोभा बढ़ जाने से हर्षान्वित, धूल से नहाये, मदमस्त साण्ड युद्ध करने के लिए गायों के बीच खड़े चिल्ला रहे हैं ।

१७. समन्मथा तीव्रतरानुरागा कुलान्विता मन्दगतिः करेणुः ।
मदान्वितं सम्परिवार्य यान्तं वनेषु भर्तारमनुप्रयाति ॥

किष्किन्धा ३०।३९

कामासक्त, अत्यन्त प्रेम में भरी, कुलीन हथिनी, मन्दगति के साथ अपने मदमस्त पति के साथ जंगलों में घूम रही है ।

१८. व्यपेतपङ्कासु सबालुकासु प्रसन्नतोयासु सगोकुलासु ।
ससारसारावविनादितासु नदीषु हंसा निपतन्ति हृष्टाः ॥

किष्किन्धा ३०।४२

जिनकी कीचड़ नष्ट हो गई है, जो रेत से भरी हुई हैं, जिनका पानी निर्मल हो गया, गौएं जिनका पानी पी रही हैं, जहां सारस कलरव कर रहे हैं, ऐसी नदियों में हंस खुशी से उतर रहे हैं ।

१९. नदीघनप्रस्रवणोदकानामतिप्रवृद्धानिलबर्हिणानाम् ।
प्लवङ्गमानां च गतोत्सवानां ध्रुवं रवाः सम्प्रति सम्प्रणष्टाः ॥

किष्किन्धा ३०।४३

शरद् ऋतु में नदियों, बादलों, झरनों के जल, झंझावातों, मोरों और हर्षरहित मेंढकों के शोर अब निश्चय ही बन्द हो गये हैं ।

२०. अनेकवर्णाः सुविनष्टकाया नवोदितेष्वम्बुधरेषु नष्टाः ।
क्षुधार्दिता घोरविषा बिलेभ्यश्चिरोषिता विप्रसरन्ति सर्पाः ॥

किष्किन्धा ३०।४४

नये बादलों को देखकर बिलों में छिपे हुए अनेक रंगों वाले, दुबले-पतले, भूखे, अत्यन्त जहरीले सांप बहुत दिनों तक बिलों में रहने के बाद निकल आये हैं ।

२१. चञ्चच्चन्द्रकरस्पर्शहर्षोन्मीलिततारका ।
अहो रागवती सन्ध्या जहाति स्वयमम्बरम् ॥ किष् ३०।४५

चन्द्रमा की चंचल किरणों के स्पर्श से हर्षित होने के कारण जिसके तारे चमकने लगे हैं ऐसी लालिमायुक्त सन्ध्या आकाश से विदा हो रही है । प्रियतम के हाथ के स्पर्श से जिसकी आंखें की पुतलियां खिल

उठी हैं ऐसी अनुराग भरी नायिका अपने आप ही अपने कपड़े उतार रही है ।

२२. रात्रिः शशाङ्कोदितसौम्यवक्त्रा तारागणोन्मीलितचारुनेत्रा।
ज्योत्स्नांशुकप्रावरणा विभाति नारीव शुक्लांशुकसंवृताङ्गी॥

किष्किन्धा ३०।४६

चांदनी की चादर ओढ़े हुए शरत्काल की रात्रि सफेद साड़ी से ढके हुए अंगों वाली नारी जैसी दीखती है । रात्रि का मुख चन्द्रमा है और नेत्र छिटके हुए तारे ।

२३. विपक्वशालिप्रसवानि भुक्त्वा प्रहर्षिता सारसचारुपंक्तिः ।
नभः समाक्रामति शीघ्रवेगा वातावधूता ग्रथितेव माला ॥

किष्किन्धा ३०।४७

पके हुए धान की बालियों को खाकर हर्ष से भरी सारसों की पंक्ति तेजी से आकाश में उड़ती हुई हवा से हिलती हुई माला की भांति दीखती है ।

२४. नवैर्नदीनां कुसुमप्रहासैर्व्याधूयमानैर्मृदुमारुतेन ।
धौतामलक्षौमपटप्रकाशैः कूलानि काशैरुपशोभितानि ॥

किष्किन्धा ३०।५१

नदीतट मन्द समीर से कम्पित फूलों की मुस्कान से सुशोभित हैं । धुले हुए साफ रेशमी वस्त्र के समान चमकने वाले नये कास के फूल नदी तटों पर खिले हुए हैं ।

२५. जलं प्रसन्नं कुसुमप्रहासं क्रौञ्चस्वनं शालिवनं विपक्वम् ।
मृदुश्च वायुर्विमलश्च चन्द्रः शंसन्ति वर्षव्यपनीतकालम्॥

किष्किन्धा ३०।५३

अब जल साफ हो गया है, फूल खिल उठे हैं, क्रौञ्चपक्षी बोल रहे हैं, धान की फसल पक गई, मन्द पवन बहने लगी है और चन्द्रमा बहुत निर्मल दिखाई देता है । ये लक्षण वर्षा-समाप्ति के हैं ।

२६. मीनोपसंदर्शितमेखलानां नदीवधूनां गतयोऽद्य मन्दाः ।
कान्तोपभुक्तालसगामिनीनां प्रभातकालेष्विव कामिनीनाम् ॥

किष्किन्धा ३०।५४

रात्रि में अपने प्रियतम के साथ समागम करके प्रातः काल अलसायी चाल से चलने वाली रमणियों की भांति नदीस्वरूपा वधू की गति भी शरत्काल में मन्द हो गई है । नदी वधू की मछलियां इसकी मेखला जैसी लगती हैं ।

२७. सचक्रवाकानि सशैवलानि काशै दुकूलैरिव संवृतानि ।
सपत्ररेखाणि सरोचनानि वधूमुखानीव नदी मुखानि ॥

किष्किन्धा ३०।५५

नदियों की शोभा वधुओं के मुख जैसी लग रही है । नदियों में तैरते चकवे गोरोचन के तिलक जैसे हैं, इनकी सेवार वधू के मुख पर बनी सुन्दर रेखाएं हैं और काश के फूल सफेद दुशाले हैं ।

२८. प्रफुल्लबाणासनचित्रितेषु प्रहृष्टषट्पादनिकूजितेषु ।
गृहीतचापोद्यतदण्डचण्डः प्रचण्डचापोऽद्य वनेषु कामः ॥

किष्किन्धा ३०।५६

फूलों से भरे सरकण्डों और पीतसाल के वृक्षों से सुशोभित तथा प्रसन्न भौंरों की गुंजार से भरे वनों में आज कामदेव अपना शक्तिशाली धनुष लिये घूम रहा है वह विरही लोगों को दण्डित करने के लिए प्रकट हुआ है ।

२९. लोकं सुवृष्ट्या परितोषयित्वा नदीस्तटाकानि च पूरयित्वा।
निष्पन्नसस्यां वसुधां च कृत्वा त्यक्त्वा नभस्तोयधराः प्रणष्टाः॥

किष्किन्धा ३०।५७

भरपूर वर्षा से लोगों को सन्तुष्ट करके, नदियों और तालाबों को पानी से भरकर तथा पृथ्वी को अनाज से परिपूर्ण करके बादल आकाश छोड़कर चले गये हैं ।

३०. दर्शयन्ति शरन्नद्यः पुलिनानि शनैः शनैः ।
नवसङ्गमसव्रीडाजघनानीव योषितः ॥ किष्किन्धा ३०।५८

शरद् ऋतु में नदियां पानी घटते जाने से धीरे-धीरे अपने तटों को उसी प्रकार दिखा रही हैं जैसे प्रथम समागम के समय शर्मीली युवतियां अपनी जघन धीरे-धीरे दिखाती हैं ।

३१. प्रसन्नसलिलाः सौम्यकुरराभिविनादिताः ।
चक्रवाकगणाकीर्णा विभान्ति सलिलाशयाः ॥ किष् ३०।५९

सभी तालाबों का पानी स्वच्छ हो गया है । इन में कुरर पक्षी कलरव कर रहे हैं, चकवों के झुण्ड जमा हैं । ऐसे जलाशय अच्छे दीख रहे हैं ।

३२. असनाः सप्तपर्णाश्च कोविदाराश्च पुष्पिताः ।
दृश्यन्ते बन्धुजीवाश्च श्यामाश्च गिरिसानुषु ॥ किष् ३०।६२

पहाड़ों की चोटियों पर पीतसाल, छितवन, कचनार, बन्धुजीव और श्याम तमाल के फूल शरद् ऋतु में खिले दिखाई दे रहे हैं ।

३३. हंससारसचक्राह्वैः कुररैश्च समन्ततः ।
पुलिनान्यवकीर्णानि नदीनां पश्य लक्ष्मण ॥ किष् ३०।६३

लक्ष्मण देखो नदियों के किनारों पर हंस, सारस, चकवे, और कुरर (क्रौञ्च) पक्षी फैले हुए हैं ।

श्रीराम

१. स च नित्यं प्रशान्तात्मा मृदुपूर्वं च भाषते ।
उच्यमानोऽपि परुषं नोत्तरं प्रतिपद्यते ॥ अयोध्या १।१०

राम का मन सदा शान्त रहता, उनकी वाणी सदैव मधुर बनी रहती। यदि कोई उनसे कठोर बात भी कहता तो वे उसका उत्तर नहीं देते ।

२. कदाचिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति ।
न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया ॥ अयोध्या १।११

राम किसी भी व्यक्ति के एकमात्र उपकार से भी सन्तुष्ट रहते, वे अपने मन को वश में रखते । इसलिए किसी के सैकड़ों अपकारों और अपराधों को भी याद नहीं रखते थे ।

३. **शीलवृद्धैर्ज्ञानवृद्धैर्वयोवृद्धैश्च सज्जनैः ।**
कथयन्नास्त वै नित्यमस्त्रयोग्यान्तरेष्वपि ॥ अयोध्या १।१२

शस्त्रास्त्रों के अभ्यास के लिए उपयुक्त समय में भी वे बीच-बीच में अवसर पाकर चरित्रवान्, ज्ञानवान् और वयोवृद्ध सज्जनों से बातचीत करते रहते और उनसे शिक्षा लेते रहते थे ।

४. **बुद्धिमान् मधुराभाषी पूर्वभाषी प्रियंवदः ।**
वीर्यवान्न च वीर्येण महता स्वेन विस्मितः ॥ अयोध्या १।१३

राम बहुत बुद्धि सम्पन्न थे और सदा मधुर वाणी से बोलते थे। अपने समीप किसी काम से आये हुए मनुष्यों से स्वयं पहले बोलते थे और मीठा बोलते थे । बल और पराक्रम से सम्पन्न होने पर भी उन्हें अपनी शक्ति का गर्व कभी नहीं होता था ।

५. **न चानृतकथो विद्वान् वृद्धानां प्रतिपूजकः ।**
अनुरक्तः प्रजाभिश्च प्रजाश्चाप्यनुरज्यते ॥ अयोध्या १।१४

वे कभी झूठ नहीं बोलते थे । राम विद्वान् थे और वृद्ध पुरुषों का सदा सम्मान करते थे । श्रीराम को प्रजा स्नेह करती थी और उन्हें भी प्रजा से प्रेम था ।

६. **सानुक्रोशो जितक्रोधो ब्राह्मणप्रतिपूजकः ।**
दीनानुकम्पी धर्मज्ञो नित्यं प्रग्रहवाञ्छुचिः ॥ अयोध्या १।१५

राम बड़े दयालु थे, उन्होंने क्रोध को जीत लिया था । वे ब्राह्मणों का आदर करते थे । दीन-दुखियों के प्रति दयालु थे । वे धर्म का तत्त्व जानते थे । उनकी इन्द्रियां वश में थीं और उनका आचार-व्यवहार शुद्ध-पवित्र था ।

७. **नाश्रेयसि रतो यश्च न विरुद्धकथारुचिः ।**
उत्तरोत्तरयुक्तीनां वक्ता वाचस्पतिर्यथा ॥ अयोध्या १।१७

अमंगलकारी अनुचित कार्यों में उनकी रुचि नहीं होती थी और न ही वे शास्त्र विरुद्ध बातें सुनते थे । वे अपने उचित पक्ष के समर्थन में बृहस्पति के समान एक से एक बढ़कर युक्तियां देते थे ।

८. धर्मकामार्थतत्त्वज्ञः स्मृतिमान् प्रतिभानवान् ।
लौकिके समयाचारे कृतकल्पो विशारदः ॥ अयोध्या १।२२

श्रीराम को धर्म, अर्थ और काम का तत्त्व भलीभांति विदित था। वे प्रतिभाशाली और स्मरण-शक्ति सम्पन्न थे । वे लोकव्यवहार और समयानुकूल आचरण करना बहुत अच्छी तरह जानते थे ।

९. निभृतः संवृताकारो गुप्तमन्त्रः सहायवान् ।
अमोघक्रोधहर्षश्च त्यागसंयमकालवित् ॥ अयोध्या १।२३

श्रीराम विनयशील, अपने मन की बात प्रकट न करने वाले, गोपनीय बात न बताने वाले और सहायता करने वाले थे । उनका क्रोध और हर्ष व्यर्थ नहीं होता था और वे त्याग तथा संयम का अवसर जानते थे ।

१०. दृढभक्तिः स्थिरप्रज्ञो नासद्ग्राही न दुर्वचः ।
निस्तन्द्रीरप्रमत्तश्च स्वदोषपरदोषवित् ॥ अयोध्या १।२४

गुरुजनों के प्रति राम के मन में बहुत सम्मान था । वे स्थितप्रज्ञ थे । वे अनुचित वस्तुएं कभी नहीं लेते थे और उनके मुख से बुरी बात नहीं निकलती थी । वे आलस्य और प्रमाद से रहित थे । उन्हें अपनी और दूसरों की कमियां मालूम थीं ।

११. धर्मज्ञः सत्यसन्धश्च शीलवाननसूयकः ।
क्षान्तः सान्त्वयिताश्लक्ष्णः कृतज्ञो विजितेन्द्रियः॥ अयो० २।३१
मृदुश्च स्थिरचित्तश्च सदा भव्योऽनसूयकः ।
प्रियवादी च भूतानां सत्यवादी च राघवः ॥ अयोध्या २।३२

श्रीराम धर्म के ज्ञाता, सत्यप्रतिज्ञ, आचारवान्, दूसरों की बुराइयां न देखने वाले, शान्त, दीन-दुखियों को सान्त्वना देने वाले, मृदुभाषी, कृतज्ञ, जितेन्द्रिय, कोमल स्वभाव वाले, स्थिरबुद्धि वाले, सदैव शान्त और सौम्य रहने वाले, किसी से ईर्ष्या न करने वाले, सभी प्राणियों के साथ मीठा बोलने वाले और सत्य बात कहने वाले हैं ।

१२. सत्यं दानं तपस्त्यागो मित्रता शौचमार्जवम् ।
विद्या च गुरुशुश्रूषा ध्रुवाण्येतानि राघवे ॥ अयोध्या १२।३०

सत्य, दान, तप, त्याग, मैत्री, पवित्रता, सरलता, विद्या और गुरुजनों की सेवा-सत्कार ये सभी सद्गुण राम में सदा विद्यमान रहते हैं ।

१३. क्षमा यस्मिंस्तपस्त्यागः सत्यं धर्मः कृतज्ञता ।
अप्यहिंसा च भूतानां तमृते का गतिर्मम ॥ अयोध्या १२।३३

जिन श्रीराम में क्षमा, तप, त्याग, सत्य, धर्म, कृतज्ञता और सभी प्राणियों के प्रति दया जैसे गुण हैं, उनके बिना मेरी कितनी दुर्दशा होगी।

१४. तद् ब्रूहि वचनं देवि राज्ञो यदभिकाङ्क्षितम् ।
करिष्ये प्रतिजाने च रामो द्विर्नाभिभाषते ॥ अयोध्या १८।३०

देवि ! महाराज जो चाहते हैं वह बात मुझे बताओ । मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि महाराज जो चाहते हैं वही करूंगा, क्योंकि राम दो तरह की बातें नहीं करता ।

१५. नाहमर्थपरो देवि लोकमावस्तुमुत्सहे ।
विद्धि मामृषिभिस्तुल्यं विमलं धर्ममास्थितम् ॥ अयो० १९।२०

हे देवि ! मैं धन का पुजारी होकर संसार में नहीं रहना चाहता। तुम्हें मालूम हो कि मैं पवित्र धर्म का आश्रय लेकर ऋषियों की भांति रहता हूं ।

१६. न चास्य महतीं लक्ष्मीं राज्यनाशोऽपकर्षति ।
लोककान्तस्य कान्तत्वाच्छीतरश्मेरिव क्षयः ॥ अयोध्या १९।३२

श्रीराम की कभी नष्ट न होने वाली कान्ति राज्य न मिलने से क्षीण नहीं हुई । प्रजा के प्रिय राम की शोभा उसी प्रकार नष्ट नहीं हुई जैसे चन्द्रमा की कलाओं के घटने से उसकी शोभा कम नहीं होती ।

१७. न वनं गन्तुकामस्य त्यजतश्च वसुन्धराम् ।
सर्वलोकातिगस्येव लक्ष्यते चित्तविक्रिया ॥ अयोध्या १९।३३

राम वनवास के लिए तैयार थे और पृथ्वी का राज्य छोड़ रहे थे,

किन्तु सर्वलोकातीत जीवन्मुक्त महात्मा की भांति उनके मन में कोई विकार नहीं आया, न ही उनके चेहरे पर दु:ख और विषाद की छाया पड़ी ।

१८. एतया तत्त्वया बुद्ध्या संस्तभ्यात्मानमात्मना ।
व्याहतेऽप्यभिषेके मे परितापो न विद्यते ।। अयोध्या २२।२५

मनुष्य को उसके भाग्य के अनुसार सुख-दु:ख मिलता है । यह तत्त्व समझ कर मैंने अपना मन वश में कर लिया है । अत: राज्याभिषेक में विघ्न पड़ने पर भी मैं दु:खी नहीं हूं ।

१९. न ह्यतो धर्मचरणं किञ्चिदस्ति महत्तरम् ।
यथा पितरि शुश्रूषा तस्य वा वचनक्रिया ।। अयोध्या १९।२२

पिता की सेवा करने और पिता की आज्ञा पालन करने से बढ़कर मनुष्य का और कोई धर्म नहीं है ।

२०. पितुर्हि वचनं कुर्वन् न कश्चिन्नाम हीयते ।। अयोध्या २१।३७

पिता की आज्ञा का पालन करने वाला कोई भी पुरुष अपने धर्म से भ्रष्ट नहीं होता ।

२१. मा च लक्ष्मण सन्तापं कार्षीर्लक्ष्म्या विपर्यये ।
राज्यं वा वनवासो वा वनवासो महोदय: ।। अयोध्या २२।२९

लक्ष्मण ! भाग्य(लक्ष्मी) के इस उलट-फेर से तुम्हें दु:खी नहीं होना चाहिए । मेरे लिए तो राजपाट या वनवास एक जैसे हैं । मुझे तो वनवास ही श्रेयस्कर प्रतीत होता है ।

२२. यं यान्तमनुयाति स्म चतुरङ्गबलं महत् ।
तमेकं सीतया सार्धमनुयाति स्म लक्ष्मण: ।। अयोध्या ३३।६

जिस रामचन्द्र के पीछे चतुरंगिणी सेना चला करती थी अब उन अकेले राम के पीछे सीता और लक्ष्मण ही चल रहे हैं ।

२३. आनृशंस्यमनुक्रोश: श्रुतं शीलं दम: शम: ।
राघवं शोभयन्त्येते षड्गुणा: पुरुषर्षभम् ।। अयोध्या ३३।१२

क्रूरता का अभाव, दया, विद्या, सदाचार, इन्द्रियजय (दम) और मनोनिग्रह (शम) ये छह गुण नरश्रेष्ठ राम को सदा सुशोभित करते रहते हैं ।

२४. मूलं ह्येष मनुष्याणां धर्मसारो महाद्युतिः ।
पुष्पं फलं च पत्रं च शाखाश्चास्येतरे जनाः ॥ अयोध्या ३३।१५

महान् तेजस्वी राम सम्पूर्ण मनुष्यों के मूल हैं । धर्म ही इन का बल है । संसार के अन्य प्राणी पत्ते, फूल, फल और शाखाएं हैं ।

२५. न हि मे काङ्क्षितं राज्यं सुखमात्मनि वा प्रियम् ।
यथानिदेशं कर्त्तुं वै तवैव रघुनन्दन ॥ अयोध्या ३४।४५

पिता जी ! मैं अपने को या अपने प्रियजनों को सुख देने की इच्छा से राज्याभिषेक के लिए सहमत नहीं हुआ था अपितु आपकी आज्ञा का पालन करने के लिए ।

२६. नैवाहं राज्यमिच्छामि न सुखं न च मेदिनीम् ।
नैव सर्वानिमान् कामान् न स्वर्गं न च जीवितुम् ॥ अयो. ३४।४७

मुझे न तो राज्य, न सुख, न पृथ्वी, न इन सब ऐश्वर्यों, न स्वर्ग और न ही जीवन की चाह है ।

२७. न क्रुध्यत्यभिशस्तोऽपि क्रोधनीयानि वर्जयन् ।
क्रुद्धान् प्रसादयन् सर्वान् समदुःखः क्व गच्छति ॥ अयो०४१।३

जो कलंक लगाये जाने पर भी क्रोध नहीं करते, क्रोध दिलाने वाली बातें भी नहीं कहते, रूठे हुए सभी लोगों को मना लेते हैं और जो दूसरों के दुख में संवेदना प्रकट करते हैं, वे राम कहां जा रहे हैं ?

२८. इदं हि चरितं लोके प्रतिष्ठास्यति शाश्वतम् ॥ अयोध्या६०।२१

श्रीराम का यह पावन चरित्र संसार में सदा स्मरण किया जाता रहेगा ।

२९. कश्चेतयानः पुरुषः कार्याकार्यविचक्षणः ।
बहु मन्येत मां लोके दुर्वृत्तं लोकदूषणम् ॥ अयोध्या १०९।७

यदि मैं शास्त्रोक्त जीवन का त्याग कर गलत आचरण करने लगूंगा तो कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य को समझने वाला कौन बुद्धिमान् व्यक्ति मेरा आदर करेगा ? लोग मुझे भी दुराचारी और समाज को कलंकित करने वाला ही मानेंगे ।

३०. सत्यप्रतिश्रवः सत्यं सत्येन समयीकृतम् ॥ अयोध्या १०९।१६

मैं सत्यप्रतिज्ञ हूं और सत्य की शपथ खाकर सत्यपालन का व्रत ले चुका हूं ।

३१. नैव लोभान्न मोहाद् वा न चाज्ञानात् तमोऽन्वितः ।
सेतुं सत्यस्य भेत्स्यामि गुरोः सत्यप्रतिश्रवः ॥ अयोध्या१०९।१७

सत्य आचरण की प्रतिज्ञा करने के पश्चात् अब मैं लोभ, मोह या अज्ञान से विवेकरहित होकर अपने पिता के सत्य की मर्यादा नहीं तोड़ूंगा ।

३२. लक्ष्मीश्चन्द्रादपेयाद् वा हिमवान् वा हिमं त्यजेत् ।
अतीयात् सागरो वेलां न प्रतिज्ञामहं पितुः ॥ अयोध्या ११२।१८

चन्द्रमा से चांदनी चाहे अलग हो जाये, हिमालय भी चाहे बर्फ से रहित हो जाये और सागर अपनी सीमा का भी उल्लंघन क्यों न कर बैठे किन्तु मैं अपने पिता की प्रतिज्ञा नहीं तोड़ सकता ।

३३. मिथ्यावाक्यं न ते भूतं न भविष्यति राघव ॥ अरण्य ९।४

हे राम ! आप ने कभी भी झूठी बात नहीं कही है आप भविष्य में भी कभी असत्य नहीं बोलेंगे ।

३४. धर्मिष्ठः सत्यसन्धश्च पितुर्निर्देशकारकः ।
त्वयि धर्मश्च सत्यं च त्वयि सर्वं प्रतिष्ठिम् ॥ अरण्य ९।७

आप सदा धर्म और सत्य का पालन करते हैं, अपने पिता की आज्ञा का पालन करते हैं । आपका जीवन धर्म और सत्य का जीवन्त उदाहरण है । आप में सम्पूर्ण गुण प्रतिष्ठित हैं ।

३५. सत्यमिष्ट हि मे सदा ॥ अरण्य १०।१८

मुझे सत्य का पालन करना सदैव अच्छा लगता है ।

३६. अप्यहं जीवितं जह्यां त्वां वा सीते सलक्ष्मणाम् ।
न तु प्रतिज्ञां संश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः ॥ अरण्य १०।१९

मैं अपने प्राण त्याग सकता हूं और सीता तथा लक्ष्मण को भी छोड़ सकता हूं किन्तु अपनी प्रतिज्ञा नहीं तोड़ सकता । विशेष रूप से ब्राह्मणों की रक्षा के लिए की गई प्रतिज्ञा तो कभी तोड़ ही नहीं सकता।

३७. असाध्यः कुपितो रामः विक्रमेण महायशाः ।
आपगास्तु पूर्णाया वेगं परिहरेच्छरैः ॥ अरण्य ३१।२३

महायशस्वी राम यदि क्रुद्ध हो जायें तो उन्हें कोई भी वश में नहीं कर सकता । क्रुद्ध राम अपने बाणों से भरी हुई नदी का प्रवाह भी पलट सकते हैं ।

३८. सताराग्रहनक्षत्रं नभश्चाप्यवसादयेत् ।
असौ रामस्तु सीदन्तीं श्रीमानभ्युद्धरेन्महीम् ॥ अरण्य ३१।२४

श्रीराम ग्रह-नक्षत्रों से परिपूर्ण आकाश को भी नष्ट कर सकते हैं और समुद्र में डूबती हुई पृथ्वी को उठा सकते हैं ।

३९. भित्त्वा वेलां समुद्रस्य लोकानाप्लावयेद् विभुः ।
वेगं वापि समुद्रस्य वायुं वा विधमेच्छरैः ॥ अरण्य ३१।२५

कुपित राम समुद्र की मर्यादा तोड़कर सम्पूर्ण लोकों को पानी में डुबा सकते हैं ओर अपने बाणों से समुद्र की लहरों का और वायु का वेग भी रोक सकते हैं ।

४०. संहृत्य वा पुनर्लोकान् विक्रमेण महायशाः ।
शक्तः श्रेष्ठः स पुरुषः स्त्रष्टुं पुनरपि प्रजाः ॥ अरण्य ३१।२६

महान् यशस्वी राम अपने पराक्रम से सारे लोकों का संहार करके नये सिरे से प्रजा की सृष्टि कर सकते हैं ।

४१. न च पित्रा परित्यक्तो नामर्यादः कथञ्चन ।
न लुब्धो न च दुःशीलो न च क्षत्रियपांसनः ॥ अरण्य ३७।८

श्रीराम को न तो पिता ने त्यागा है, न ही उन्होंने किसी भी प्रकार धर्म की मर्यादा भंग की है । श्रीराम, लालची, दुराचारी और क्षत्रियों के कलंक भी नहीं हैं ।

४२. रामो विग्रहवान् धर्मः साधुः सत्यपराक्रमः ।
राजा सर्वस्य लोकस्य देवानामिव वासवः ॥ अरण्य ३७।१३

श्रीराम, धर्म के मूर्त्तिमान् अवतार हैं । वे सज्जन हैं और सत्य आचरण पर दृढ़ रहने वाले हैं । जैसे इन्द्र सभी देवताओं का अधिपति है उसी प्रकार श्रीराम भी सम्पूर्ण जगत् के राजा हैं ।

४३. दद्यान्न प्रतिगृह्णीयात् सत्यं ब्रूयान्न चानृतम् ।
एतद् ब्राह्मण रामस्य व्रतं धृतमनुत्तमम् ॥ अरण्य ४७।१७-१८

श्रीराम केवल देते हैं बदले में किसी से कुछ नहीं लेते । वे सदा सत्य बोलते हैं झूठ तो कदापि नहीं बोलते । श्रीराम का यही सर्वोत्तम व्रत है ।

४४. महागिरिमिवाकम्प्यं महेन्द्रसदृशं पतिम् ।
महोदधिनिवाक्षोभ्यमहं राममनुव्रता ॥ अरण्य ४७।३३

मेरे पति श्रीराम महान् पर्वत की भांति अविचल हैं, इन्द्र के समान पराक्रमी हैं और महासागर की तरह शान्त हैं । मेरा मन उन्हीं में सदा अनुरक्त रहता है ।

४५. यश्चन्द्रं नभसो भूमौ पातयेन्नाशयेत वा ।
सागरं शोषयेद् वापि स सीतां मोचयेदिह ॥ अरण्य ५६।११

जो राम चन्द्रमा को आकाश से गिरा सकते हैं और उसे नष्ट कर सकते हैं तथा सागर को भी सुखा सकते हैं वे यहां आकर सीता को भी छुड़ा सकते हैं ।

४६. यथा जरा यथा मृत्युर्यथा कालो यथा विधिः ।
नित्यं न प्रतिहन्यन्ते सर्वभूतेषु लक्ष्मण ।
तथाहं क्रोधसंयुक्तो न निवार्योऽस्म्यसंशयम् ॥ अरण्य ६४।७६

लक्ष्मण ! जैसे वृद्धावस्था, मृत्यु, काल और भाग्य सभी प्राणियों पर प्रहार करते रहते हैं और उन्हें कोई रोक नहीं पाता उसी प्रकार मुझ क्रुद्ध राम को निश्चय ही कोई भी रोक नहीं पायेगा ।

४७. चन्द्रे लक्ष्मी प्रभा सूर्ये गतिर्वायौ भुवि क्षमा ।
एतच्च नियतं नित्यं त्वयि चानुत्तमं यशः ॥ अरण्य ६५।५

चन्द्रमा में कान्ति, सूर्य में तेज, वायु में प्रवाह और पृथिवी में क्षमा सदा रहती है उसी प्रकार आप राम में सर्वोत्तम यश सर्वदा रहता है।

४८. सदा त्वं सर्वभूतानां शरण्यः परमा गतिः ॥ अरण्य ६५।१०

आप सदैव सभी प्राणियों को शरण देने वाले और उनकी परम गति हैं ।

४९. राज्यं नष्टं वने वासः सीता नष्टा मृतो द्विजः ।
ईदृशीयं ममालक्ष्मीर्दहेदपि पावकम् ॥ अरण्य ६७।२४

मेरा राज्य छिन गया, वनवास मिल गया, सीता का अपहरण हो गया और मेरे सहायक पक्षीराज भी मारे गये । यह मेरा परम दुर्भाग्य तो अग्नि को भी भस्म कर सकता है ।

५०. मयि भावो हि वैदेह्यास्तत्त्वतो विनिवेशितः ।
ममापि भावः सीतायां सर्वथा विनिवेशितः ॥ किष् १।५२

विदेहकुमारी सीता का हार्दिक अनुराग मुझ में ही है और मेरा भी सम्पूर्ण प्रेम सीता में ही है ।

५१. शरण्यः सर्वभूतानां पितुर्निदेशपारगः ॥ किष्किन्धा ४।९

श्रीराम सभी प्राणियों की शरण हैं और पिता की आज्ञा का पालन करने वाले हैं ।

५२. यस्य प्रसादे सततं प्रसीदेयुरिमाः प्रजाः ।
स रामो वानरेन्द्रस्य प्रसादमभिकाङ्क्षते ॥ किष्किन्धा ४।२१

जिन श्रीराम के प्रसन्न होने पर सारी प्रजा का हृदय खिल उठता था आज वही राम वानरनरेश सुग्रीव की कृपा चाहते हैं ।

५३. अनृतं नोक्तपूर्वं मे न च वक्ष्ये कदाचन ॥ किष्किन्धा ७।२२

मैंने पहले कभी झूठ नहीं बोला है और न ही कभी झूठ बोलूंगा।

५४. यथाहि तेजःसु वरः सदारविर्यथा हि शैलो हिमवान् महाद्रिषु।
यथा चतुष्पात्सु च केसरी वरस्तथा नराणामसि विक्रमे वरः ॥

किष्किन्धा ११।९३

जिस प्रकार समस्त तेजस्वी पदार्थों में सूर्य सर्वश्रेष्ठ है, महान् पर्वतों में हिमालय सर्वश्रेष्ठ है तथा सारे चौपाये पशुओं में सिंह सर्वश्रेष्ठ है उसी प्रकार श्रीराम सभी मनुष्यों में पुरुषोत्तम हैं ।

५५. अनृतं नोक्तपूर्वं में चिरं कृच्छ्रेऽपि तिष्ठता ।
धर्मलोभपरीतेन न च वक्ष्ये कदाचन ॥ किष्किन्धा १४।१५

बहुत समय से संकटों में पड़े रहने पर भी मैंने कभी झूठ नहीं बोला । मेरा मन धर्माचरण का लोभी है अतः मैं कभी भी झूठ नहीं बोलूंगा ।

५६. रामः परबलामर्दी युगान्ताग्निरिवोत्थितः ।
निवासवृक्षः साधूनामापन्नानां परा गतिः ॥ किष्किन्धा १५।१९

श्रीराम शत्रु सेना का संहार करने में समर्थ हैं । वे प्रलय की अग्नि की भांति तेजस्वी हैं, वे सज्जनों के आश्रयदाता कल्पवृक्ष हैं और संकटग्रस्त प्राणियों का सब से बड़ा सहारा हैं ।

५७. आर्तानां संश्रयश्चैव यशसश्चैक भाजनम् ।
ज्ञानविज्ञानसम्पन्नो निदेशे निरतः पितुः ॥ किष्किन्धा १५।२०

श्रीराम दीनदुखियों का सहारा, कीर्त्ति के एकमात्र पात्र, ज्ञान-विज्ञान में निष्णात और पिता की आज्ञा मानने वाले हैं ।

५८. कुलीनः सत्त्वसम्पन्नस्तेजस्वी चरितव्रतः ।
रामः करुणवेदी च प्रजानां च हिते रतः ॥ किष्किन्धा १७।१७

श्रीराम, कुलीन सत्त्वगुण से युक्त, तेजस्वी, चरित्रवान्, दयालु और प्रजा के हितैषी हैं ।

५९. त्वं हि दृष्टार्थतत्त्वज्ञः प्रजानां च हिते रतः ।
कार्यकारणसिद्धौ च प्रसन्ना बुद्धिरव्यथा ॥ किष्किन्धा १८।४७

आप परमार्थतत्त्व को जानने वाले, प्रजा का हित करने वाले हैं तथा आपकी बुद्धि कार्य-कारण का निश्चय आसानी से ठीक ठीक कर लेती है ।

६०. त्वमप्रमेयश्च दुरासदश्च जितेन्द्रियश्चोत्तमधर्मकश्च ।
अक्षीणकीर्तिश्च विचक्षणश्च क्षितिक्षमावान् क्षतजोपमाक्षः॥
किष्किन्धा २४।

हे राम ! आप देश, काल और वस्तु की सीमा से रहित अप्रमेय हैं, आपको प्राप्त करना बहुत कठिन है, आप जितेन्द्रिय और धर्म का पालन करने वाले हैं । आपका यश कभी नष्ट नहीं होता, आप दूरदर्शी और पृथ्वी की भांति क्षमाशील हैं तथा आपके नयन कुछ लाल हैं ।

६१. चतुर्दश समाः सौम्य ग्रामं वा यदि वा पुरम् ।
न प्रवेक्ष्यामि हनुमन् पितुर्निदेशपालकः ॥ किष् २६।९, १०

हे सौम्य हनुमान् ! मैं पिता की आज्ञा का पालन कर रहा हूं इसलिए चौदह वर्षों तक किसी ग्राम में या नगर में नहीं जाऊंगा ।

६२. भवान् क्रियापरो लोके भवान् देवपरायणः ।
आस्तिको धर्मशीलश्च व्यवसायी च राघव ॥ किष् २७।३५

हे राम ! आप कर्मठ, देवताओं का सम्मान करने वाले, ईश्वर में विश्वास रखने वाले, धार्मिक और उद्योगशील हैं ।

६३. पृथिवीमपि काकुत्स्थ ससागरवनाचलाम् ।
परिवर्तयितुं शक्तः किं पुनस्तं हि रावणम् ॥ किष्किन्धा २७।३८

हे राम ! आप समुद्र, वन और पर्वतों समेत सारी पृथ्वी को उलट सकते हैं फिर उस रावण को मार डालना कौन बड़ी बात है ।

६४. रक्षिता स्वस्य वृत्तस्य स्वजनस्यापि रक्षिता ।
रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य च परन्तपः ॥ सुन्दर ३१।७

शत्रुओं को सन्ताप देने वाले श्रीराम अपने सच्चरित्र के, अपने परिजनों के, समस्त जगत् के प्राणियों के और धर्म के रक्षक हैं ।

६५. दद्यान्न प्रतिगृह्णीयात् सत्यं ब्रूयान्न चानृतम् ।
अपि जीवितहेतोर्हि रामः सत्यपराक्रमः ॥ सुन्दर ३३।२५

सत्य का पालन करने वाले राम सदा देते हैं, बदले में किसी से कुछ लेते नहीं, वे सदा सत्य बोलते हैं । अपने प्राणों की रक्षा के लिए भी झूठ नहीं बोलते ।

६६. आदित्य इव तेजस्वी लोककान्तः शशी यथा ।
राजा सर्वस्य लोकस्य देवो वैश्रवणो यथा ॥ सुन्दर ३४।२८

श्रीराम सूर्य के समान तेजस्वी, चन्द्रमा की भांति संसार के प्रिय और कुबेर की तरह सारे संसार के राजा हैं ।

६७. विक्रमेणोपपन्नश्च यथा विष्णुर्महायशाः ।
सत्यवादी, मधुरवाग् देवो वाचस्पतिर्यथा ॥ सुन्दर ३४।२९

श्रीराम, महायशस्वी विष्णु की भांति पराक्रमी तथा बृहस्पति के समान सत्यवादी और मधुरभाषी हैं ।

६८. रूपवान् सुभगः श्रीमान् कन्दर्प इव मूर्त्तिमान् ।
स्थानक्रोधे प्रहर्ता च श्रेष्ठो लोके महारथः ॥ सुन्दर ३४।३०

श्रीराम इतने अधिक सुन्दर, सौभाग्यसम्पन्न और कान्तिमान् हैं मानो वे मूर्त्तिमान् कामदेव ही हैं । वे क्रोध के पात्र पर ही प्रहार करते हैं और संसार के श्रेष्ठ महारथी योद्धा हैं ।

६९. बाहुच्छायामवष्टब्धो यस्य लोको महात्मनः ॥ सुन्दर ३४।३१

सम्पूर्ण विश्व उन महात्मा राम की भुजाओं में विश्राम करता है।

७०. रामः कमलपत्राक्षः पूर्णचन्द्रनिभाननः ।
रूपदाक्षिण्यसम्पन्नः प्रसूतो जनकात्मजे ॥ सुन्दर ३५।८

हे जनकपुत्रि ! राम के नयन कमलपत्र के समान विशाल हैं । उनका मुख पूर्णिमा के चन्द्र की भांति सुन्दर है । राम जन्म से ही रूप

और उदारता आदि गुणों से सम्पन्न हैं ।

७१. तेजसाऽऽदित्यसंकाशः क्षमया पृथिवीसमः ।
बृहस्पतिसमो बुद्ध्या यशसा वासवोपमः ॥ सुन्दर ३५।९

श्रीराम; सूर्य के समान तेजस्वी, पृथ्वी की भांति क्षमाशील, बृहस्पति की तरह बुद्धिमान् और इन्द्र के समान यशस्वी हैं ।

७२. अर्चिष्मानर्चितोऽत्यर्थं ब्रह्मचर्यव्रते स्थितः ।
साधूनामुपकारज्ञः प्रचारज्ञश्च कर्मणाम् ॥ सुन्दर ३५।१२

श्रीराम कान्तिमान् हैं, उनकी अत्यधिक पूजा की जाती है, वे ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करते हैं, सज्जनों के उपकारों को मानते हैं और सत्कर्मों का प्रचार करना जानते हैं ।

७३. विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवः शुभाननः ।
गूढजत्रुः सुताम्राक्षो रामो नाम जनैः श्रुतः ॥ सुन्दर ३५।१५

श्रीराम के कन्धे चौड़े, भुजाएं दीर्घ, गर्दन शंख जैसी और उनका मुख सुन्दर है । उनकी हंसुली पर मांस है, और आंखें थोड़ी लाल हैं। लोग उन्हें राम कहकर पुकारते हैं ।

७४. धर्मापदेशात् त्यजतः स्वराज्यं, मां चाप्यरण्यं नयतः पदातेः।
नासीद् यथा यस्य न भीर्न शोकः, कच्चित् स धैर्यं हृदये करोति॥
सुन्दर ३६।२९

धर्मपालन के लिए अपना राज्य त्यागते हुए, और मुझे वन में पैदल लाते हुए जिन्हें तनिक भी भय और दुःख नहीं हुआ क्या वे राम इन दिनों धैर्य धारण किये हुए हैं ?

७५. न मांसं राघवो भुङ्क्ते न चैव मधु सेवते ।
वन्यं सुविहितं नित्यं भक्तमश्नाति पञ्चमम् ॥ सुन्दर ३६।४१

श्रीराम मांस नहीं खाते, वे शहद आदि मीठे पदार्थ भी नहीं खाते । वे चार समय उपवास करके पांचवें प्रहर में वन के फल मूल खाते हैं ।

७६. नैव दंशान् न मशकान् न कीटान् न सरीसृपान् ।
राघवोऽपनयेद् गात्रात् त्वदगतेनान्तरात्मना ॥ सुन्दर ३६।४२

श्रीराम का मन सदा आपका ही स्मरण करता रहता है अत: उन्हें अपने शरीर से डांस, मच्छर, कीट पतंग और रेंगने वाले सांप आदि को हटाने की सुधि नहीं रहती ।

७७. अनिद्रः सततं रामः सुप्तोऽपि च नरोत्तमः ।
सीतेति मधुरां वाणीं व्याहरन् प्रतिबुध्यते ॥ सुन्दर ३६।४४

राम सदा जागते रहते हैं । यदि उन्हें कभी नींद आ भी जाती है तो मधुर स्वर से सीता-सीता कहते हुए जाग उठते हैं ।

७८. अमृतं विषसम्पृक्तं त्वया वानर भाषितम् ।
यच्च नान्यमना रामो यच्च शोकपरायणः ॥ सुन्दर ३७।२

हनुमान् जी ! आप ने बताया कि राम का मन मेरे सिवाय कहीं नहीं जाता और वे शोकाकुल हैं । आपकी यह बात विष मिले अमृत की भांति लग रही है ।

७९. उत्साहः पौरुषं सत्त्वमानृशंस्यं कृतज्ञता ।
विक्रमश्च प्रभावश्च सन्ति वानर राघवे ॥ सुन्दर ३७।१५

वानर ! राम में उत्साह, पुरुषार्थ, बल, दयालुता, कृतज्ञता, पराक्रम और प्रभाव आदि सारे गुण विद्यमान हैं ।

८०. न स शक्यस्तुलयितुं व्यसनैः पुरुषर्षभः ॥ सुन्दर ३७।१७

पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ श्रीराम संकटों में कदापि विचलित नहीं हो सकते हैं ।

८१. न सर्वे भ्रातरस्तात भवन्ति भरतोपमाः ।
मद्विधा वा पितुः पुत्राः सुहृदो वा भवद्विधाः ॥ युद्ध १८।१५

सुग्रीव ! सभी भाई भरत जैसे नहीं होते, पिता के सब पुत्र मेरे जैसे नहीं होते और सभी मित्र तुम्हारे जैसे नहीं होते ।

८२. सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ॥ युद्ध १८।३३

जो एक बार भी शरण में आकर 'मैं आपका हूं' कहकर शरण देने की याचना करता है उसे मैं सब प्राणियों से अभय का दान देता हूं । यही मेरा व्रत है ।

८३. यस्मिन् न चलते धर्मो यो धर्मं नातिवर्तते ।
यो ब्राह्ममस्त्रं वेदांश्च वेद वेदविदां वरः ॥ युद्ध २८।१९

जिन से धर्म कभी अलग नहीं होता और जो धर्म का उल्लंघन कभी नहीं करते । जिन्हें ब्रह्मास्त्र का और वेदों का ज्ञान है । वे वेदों के श्रेष्ठ विद्वान् हैं ।

८४. नास्ति रामस्य सदृशे विक्रमे भुवि कश्चन ॥ युद्ध ३०।२९

संसार में श्रीराम के समान पराक्रमी और कोई नहीं है ।

८५. वक्तुं न शक्तो रामस्य गुणान् कश्चिन्नरः क्षितौ ॥
युद्ध ३०।३०

इस भूमण्डल में कोई भी व्यक्ति श्रीराम के गुणों का पूरा वर्णन नहीं कर सकता ।

८६. सखे राघव धर्मज्ञ रिपूणामपि वत्सल ॥ युद्ध ५०।५९

हे मित्र श्रीराम ! आप धर्म का सार जानते हैं और शत्रुओं पर भी दया करते हैं ।

८७. रामः सर्वस्य लोकस्य हितेष्वभिरतः सदा ॥ युद्ध ११९।३०

श्रीराम सदैव सभी लोकों का हित सम्पादन करते रहते हैं ।

८८. सङ्गत्या भरतः श्रीमान् राज्येनार्थी स्वयं भवेत् ।
प्रशास्तु वसुधां सर्वामखिलां रघुनन्दनः ॥ युद्ध १२५।१७

यदि कैकेयी की संगति से अथवा १४ वर्षों तक शासन का सुख भोगने के कारण श्रीमान् भरत स्वयं राजपाट चाहते हों तो वे सारी भूमि

पर शासन करते रहें ।

८९. विक्रमस्ते यथा विष्णो रूपं चैवाश्विनोरिव ।
बुद्ध्या बृहस्पतिस्तुल्यः प्रजापतिसमो ह्यसि ॥ उत्तर ३७।५

श्रीराम का पराक्रम विष्णु के समान है । उनका रूप अश्विनीकुमारों जैसा है, उनकी बुद्धि बृहस्पति जैसी है और वे प्रजापति की भांति प्रजापालक हैं ।

९०. क्षमा ते पृथिवी तुल्या तेजसा भास्करोपमः ।
वेगस्ते वायुना तुल्यो गाम्भीर्यमुदधेरिव ॥ उत्तर ३७।६

आप पृथिवी के समान क्षमाशील हैं, सूर्य के समान तेजस्वी हैं, वायु के समान वेगशाली हैं और सागर के समान गम्भीर स्वभाव के हैं ।

९१. अप्रकम्प्यो यथा स्थाणुश्चन्द्रे सौम्यत्वमीदृशम् ।
नेदृशाः पार्थिवाः पूर्वं भवितारो नराधिप ॥ उत्तर ३७।७

आप युद्ध में शंकर के समान अविचल हैं । आप में चन्द्रमा जैसी सौम्यता है । आप जैसे राजा पहले कभी नहीं हुए और न भविष्य में होंगे ।

९२. यथा त्वमसि दुर्धर्षो धर्मनित्यः प्रजाहितः ।
न त्वां जहाति कीर्तिश्च लक्ष्मीश्च पुरुषर्षभ ॥ उत्तर ३७।८

पुरुषोत्तम ! आपको परास्त करना असम्भव है । आप सदा धर्मपालन में और प्रजा के हित में लगे रहते हैं । यश और लक्ष्मी आपको कभी नहीं छोड़ते ।

९३. अप्यहं जीवितं जह्यां युष्मान् वा पुरुषर्षभाः ।
अपवादभयाद् भीतः किं पुनर्जनकात्मजाम् ॥ उत्तर ४५।१४,१५

नरश्रेष्ठ बन्धुओ ! मैं लोकनिन्दा के भय से अपने प्राणों को और आप सब को भी छोड़ सकता हूं । फिर सीता को त्यागना कौन बड़ी बात है ।

९४. शक्तस्त्वमात्मनाऽऽत्मानं विनेतुं मनसा मनः ।
लोकान् सर्वांश्च काकुत्स्थ किं पुनः शोकमात्मनः॥ उत्तर ५२।१३

हे काकुत्स्थ ! आप अपनी आत्मशक्ति से और मानसिक शक्ति से अपने आत्मा और मन को ही नहीं अपितु सम्पूर्ण लोकों को वश में कर सकते हैं, फिर अपने शोक पर विजय पाना आपके लिए कौन बड़ी बात है ?

९५. चत्वारो दिवसाः सौम्य कार्यं पौरजनस्य च ।
अकुर्वाणस्य सौमित्रे तन्मे मर्माणि कृन्तति ॥ उत्तर ५३।४

सौम्य लक्ष्मण ! मुझे अयोध्यावासियों के कार्य न करते हुए चार दिन बीत गये हैं यह बात मुझे मर्मान्तक पीड़ा दे रही है ।

९६. पावनः सर्वभूतानां त्वमेव रघुनन्दन ॥ उत्तर ८२।९

हे राम ! आप सम्पूर्ण प्राणियों को पवित्र करने वाले हैं ।

९७. मुहूर्तमपि राम त्वां येऽनुपश्यन्ति केचन ।
पाविताः स्वर्गभूताश्च पूज्यास्ते त्रिदिवेश्वरैः ॥ उत्तर ८२।१०

राम ! जो व्यक्ति आपका दर्शन क्षणभर के लिए भी कर लेते हैं वे पवित्र, पूज्य और स्वर्ग के अधिकारी हो जाते हैं । देवता भी ऐसे व्यक्तियों का सम्मान करते हैं ।

९८. ये च त्वां घोरचक्षुर्भिः पश्यन्ति प्राणिनो भुवि ।
हतास्ते यमदण्डेन सद्यो निरयगामिनः ॥ उत्तर ८२।११

इस पृथ्वी के जो प्राणी आपको क्रूर दृष्टि से देखते हैं वे यमराज के दण्ड से मारे जाते हैं ओर नरक में जाते हैं ।

९९. ईदृशस्त्वं रघुश्रेष्ठ पावनः सर्वदेहिनाम् ।
भुवि त्वां कथयन्तो हि सिद्धिमेष्यन्ति राघव ॥ उत्तर ८२।१२

रघुकुलतिलक राम आप ऐसे महिमा सम्पन्न हैं, सब प्राणियों को पवित्र करने वाले हैं । इस पृथिवी पर आपका चरित्र सुनाने वाले सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं ।

१००. **त्वं गच्छारिष्टमव्यग्रः पन्थानमकुतोभयम् ।**
प्रशाधिराज्यं धर्मेण गतिर्हि जगतो भवान् ॥ उत्तर ८२।१३

आप निश्चिन्त होकर सकुशल जाइये ! मार्ग में आपको कोई भय न हो । आप धर्मानुसार शासन कीजिये । आप समस्त जगत् की शरण हैं।

१०१. **विसर्जये त्वां सौमित्रे मा भूद् धर्मविपर्ययः ।**
त्यागो वधो वा विहितः साधूनां ह्युभयं समम् ॥ उत्तर १०६।१३

लक्ष्मण ! मैं तुम्हारा परित्याग करता हूं ताकि धर्म का लोप न हो । साधु पुरुषों का त्याग अथवा वध दोनों ही एकसमान होते हैं।

१०२. **अव्याहरन् क्वचित् किञ्चिन्निश्चेष्टो निःसुखः पथि ।**
निर्जगाम गृहात् तस्मात् दीप्यमानो यथांशुमान् ॥ उत्तर १०९।५

महाप्रयाण के पथ पर जाते हुए श्रीराम किसी से नहीं बोल रहे थे । यन्त्रवत् चल रहे थे । लौकिक सुखों का परित्याग करके सूर्य की भांति तेजस्वी राम घर से निकल पड़े ।

शोक

१. **शोको नाशयते धैर्यं शोको नाशयते श्रुतम् ।**
शोको नाशयते सर्वं नास्ति शोकसमो रिपुः ॥ अयोध्या ६२।१५

शोक, धैर्य, विद्वत्ता और मनुष्य के सम्पूर्ण गुणों को नष्ट कर देता है । शोक जैसा शत्रु हमारा और कोई नहीं है ।

२. **शक्यमापतितः सोढुं प्रहारो रिपुहस्ततः ।**
सोढुमापतितः शोकः सुसूक्ष्मोऽपि न शक्यते ॥ अयोध्या ६२।१६

शत्रु के हाथ से किया गया वार सहन किया जा सकता है किन्तु छोटे से छोटे शोक को सहन नहीं किया जाता ।

३. **ये शोकमनुवर्तन्ते न तेषां विद्यते सुखम् ।**
तेजश्च क्षीयते तेषां न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ किष्किन्धा ७।१२

शोक करते रहने वाले सुखी नहीं रहते, उनका बल तेज भी नष्ट हो जाता है इसलिए तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए ।

४. **शोकेनाभिप्रपन्नस्य जीविते चापि संशयः ॥** किष्किन्धा ७।१३

शोक में डूबे हुए मनुष्य का जीवन संकट में पड़ जाता है ।

५. **न शोकपरितापेन श्रेयसा युज्यते मृतः ॥** किष्किन्धा २५।२

शोक और विलाप करने से मृत व्यक्ति का कोई भला नहीं होता।

६. **तदलं परितापेन प्राप्तकालमुपास्यताम् ॥** किष्किन्धा २५।११

रोना धोना बन्द कर अवसर के अनुकूल अपना कर्त्तव्य करना चाहिए ।

७. **शोचतो ह्यवसीदन्ति सर्वार्था विदितं हि ते ॥** किष्किन्धा २७।३४

तुम जानते हो कि शोक करने वाले के सभी काम बिगड़ जाते हैं ।

८. **पुरुषस्य हि लोकेऽस्मिन् शोकः शौर्यापकर्षणः ॥** युद्ध २।१३

इस संसार में रोने पीटने वाले मनुष्य की तेजस्विता समाप्त हो जाती है ।

९. **विनष्टे वा प्रणष्टे वा शोकः सर्वार्थनाशनः ॥** युद्ध २।१५

किसी वस्तु के नष्ट हो जाने या खो जाने पर उस चीज के लिए दुःख करने से रही सही चीजें भी नष्ट हो जाती हैं ।

१०. **शोकश्च किल कालेन गच्छता ह्यपगच्छति ॥** युद्ध ५।४

समय बीतने के साथ साथ शोक का कष्ट भी घटता जाता है।

सत्य

१. **सत्ये लोकः प्रतिष्ठितः ॥** अयोध्या १०९।१०

सत्य व्यवहार से ही संसार चल रहा है ।

२. **सत्यवादी हि लोकेऽस्मिन् परं गच्छति चाक्षयम् ॥**

अयोध्या १०९।११

सत्यवादी पुरुष को इसी संसार में कभी नष्ट न होने वाला सर्वोच्च स्थान प्राप्त होता है ।

३. **उद्विजन्ते यथा सर्पान्नरादनृतवादिनः ।**
धर्मः सत्यपरो लोके मूलं सर्वस्य चोच्यते ॥ अयोध्या १०९।१२

झूठ बोलने वाले पुरुष से सभी लोग उसी तरह घबराते हैं जैसे सांप को देखकर । इस जगत् में सत्य ही धर्म की पराकाष्ठा है तथा सत्याचरण सभी कार्यों का आधार है ।

४. **सत्यान्नास्ति परं पदम् ॥** अयोध्या १०९।१३

सत्याचरण से बढ़कर और कोई आदरणीय कार्य नहीं है ।

५. **भूमिः कीर्तिर्यशो लक्ष्मीः पुरुषं प्रार्थयन्ति हि ।**
सत्यं समनुवर्तन्ते सत्यमेव भजेत् ततः ॥ अयोध्या १०९।२२

भूमि, यश, आदर और लक्ष्मी ये सब सत्यवादी पुरुष के पास रहना चाहती हैं और उसके वश में रहती हैं । इसलिए हमें सत्य का पालन करना चाहिए ।

६. **सत्यमेकपदं ब्रह्म सत्ये धर्मः प्रतिष्ठितः ।**
सत्यमेवाक्षया वेदाः सत्येनावाप्यते परम् ॥ अयोध्या १४।७

सत्य ही एकाक्षर प्रणवरूप शब्द ब्रह्म है । सत्य में ही धर्म की प्रतिष्ठा है । सत्य ही अविनाशी वेद हैं और सत्य से ही परब्रह्म प्राप्त होता है ।

७. **सत्यधर्माभिरक्तानां नास्ति मृत्युकृतं भयम् ॥** युद्ध ४६।३३

सत्य धर्म का पालन करने वालों को मृत्यु का भय नहीं सताता।

८. **न हि प्रतिज्ञां कुर्वन्ति वितथां सत्यवादिनः ।**
लक्षणं हि महत्त्वस्य प्रतिज्ञापरिपालनम् ॥ युद्ध १०१।५२

सत्यवादी पुरुष झूठी प्रतिज्ञा नहीं करते । प्रतिज्ञा का पालन करना बड़प्पन की निशानी होती है ।

९. **न परः पापमादत्ते परेषां पापकर्मणाम् ।**
समयो रक्षितव्यस्तु सन्तश्चारित्रभूषणाः ॥ युद्ध ११३।४४

सज्जन पापपूर्ण कर्म करने वालों की बुरीबातें नहीं अपनाते । सज्जनों का आभूषण सच्चरित्र ही होता है अतः उन्हें अपनी प्रतिज्ञा का पालन करना चाहिए ।

१०. **हीनप्रतिज्ञाः काकुत्स्थ प्रयान्ति नरकं नराः ॥** उत्तर १०६।३

हे राम ! प्रतिज्ञा भंग करने वाले पुरुष नरक का दुख भोगते हैं।

११. **प्रतिज्ञायां हि नष्टायां धर्मो हि विलयं व्रजेत् ॥** उत्तर १०६।९

प्रतिज्ञा भंग करने से धर्म नष्ट हो जाता है ।

सद्गुण

१. **मनसा कर्मणा वाचा चक्षुषा च समाचरेत् ।**
श्रेयो लोकस्य चरतो न द्वेष्टि न च लिप्यते ॥

उत्तर ५९। प्रक्षिप्त २।२४

अपने मन, वाणी, आंख और कामों से लोगों की भलाई करनी चाहिए । किसी से द्वेष नहीं रखना चाहिए और न ही किसी से मोह रखना चाहिए ।

२. **विनीतविनयस्यापि प्रकृतिर्न विधीयते ।**
प्रकृतिं गूहमानस्य निश्चयेन कृतिर्ध्रुवा ॥ उत्तर ५९। प्रक्षिप्त २।२६

विनयशील रहने की शिक्षा प्राप्त व्यक्ति का स्वभाव बदला नहीं जा सकता । अपने दुष्ट स्वभाव को छिपाने का प्रयत्न करने वाले की दुष्टता अवश्य ही पता चल जाती है ।

सीता

१. **धर्माद् विचलितुं नाहमलं चन्द्रादिव प्रभा ॥** अयोध्या ३९।२८

जिस प्रकार चांदनी को चन्द्रमा से अलग नहीं किया जा सकता उसी प्रकार मैं पतिव्रत-धर्म नहीं छोड़ सकती ।

२. **तदेवमेतं त्वमनुव्रता सती पतिप्रधाना समयानुवर्त्तिनी ।**
भव स्वभर्तुः सहधर्मचारिणी यशश्च धर्मं च ततः समाप्स्यसि॥

अयोध्या ११७।२९

तुम इसी प्रकार अपने पति श्रीराम की सेवा करती रहो, सतीत्व का पालन करती रहो, पति को ही प्रधान देवता मानो, प्रत्येक समय पति का अनुसरण करती रहो, और अपने पति की सहधर्मिणी बनी रहो। तुम्हारे इस आचरण से तुम्हें कीर्त्ति और धर्म दोनों ही मिलेंगे ।

३. **सधर्मचारिणी मे त्वं प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ॥** अरण्य १०।२१

सीते ! तुम मेरी सहधर्मिणी हो और प्राणों से भी बढ़कर प्रिय हो।

४. **त्वं पुनर्जम्बूकः सिंहीं मामिहेच्छसिदुर्लभाम् ।**
नहि शक्या त्वया स्प्रष्टुमादित्यस्य प्रभा यथा ॥ अरण्य ४७।३७

अरे रावण ! तू तो गीदड़ है और मैं शेरनी हूं । तेरे लिए मैं दुर्लभ हूं फिर क्यों मुझे पाना चाहता है । जैसे कोई सूर्य की प्रभा को नहीं छू सकता, उसी प्रकार तू मुझे हाथ भी नहीं लगा सकता ।

५. **दैवतानि च यान्यस्मिन् वने विविधपादपे ।**
नमस्करोम्यहं तेभ्यो भर्तुः शंसत् मां हृताम् ॥ अरण्य ४९।३२

मैं इस वन के सम्पूर्ण वनदेवताओं और वृक्षों को प्रणाम करती हूं । आप मेरे पति को बता दीजियेगा कि रावण ने मेरा अपहरण कर लिया है ।

६. **तथाहं धर्मनित्यस्य धर्मपत्नी दृढव्रता ।**
त्वया स्प्रष्टुं न शक्याहं राक्षसाधम पापिना ॥ अरण्य ५६।१९

नित्य धर्म का पालन करने वाले श्रीराम की मैं धर्मपत्नी हूं और पतिव्रत धर्म का पूरी तरह पालन करती हूं । अरे नीच राक्षस तू मुझे नहीं छू सकता ।

७. **इदं शरीरं निःसंज्ञं बन्ध वा घातयस्व वा ।**
नेदं शरीरं रक्ष्यं मे जीवितं वापि राक्षस ॥ अरण्य ५६।२१

अरे राक्षस ! मेरा यह शरीर चेतनारहित हो गया है अतः तू इसे बांध दे या काट डाल । मैं इस शरीर को और अपने जीवन को नहीं चाहती ।

८. **न तु शक्यमपक्रोशं पृथिव्यां दातुमात्मनः ॥** अरण्य ५६।२२

मैं इस पृथिवी पर अपने लिए निन्दाजनक या कलंक लगाने वाला कोई भी काम नहीं कर सकती ।

९. **यदि सीता हि दुःखार्त्ता कालो हि दुरतिक्रमः ॥** सुन्दर १६।३

यदि सीता भी दुःखी है तो मानना होगा कि काल का उल्लंघन कोई नहीं कर सकता ।

१०. **रामस्य व्यवसायज्ञा लक्ष्मणस्य च धीमतः ।**
नात्यर्थं क्षुभ्यते देवी गङ्गेव जलदागमे ॥ सुन्दर १६।४

श्रीराम तथा बुद्धिमान् लक्ष्मण के पराक्रम को जानती हुई भी सीता शोक से उसी प्रकार बहुत व्याकुल नहीं हो रही हैं जैसे वर्षा ऋतु में गंगा अधिक क्षुब्ध नहीं होती ।

११. **राज्यं वा त्रिषु लोकेषु सीता वा जनकात्मजा ।**
त्रैलोक्यराज्यं सकलं सीताया नाप्नुयात् कलाम् ॥ सुन्दर १६।१४

यदि तीनों लोकों के राज्य और सीता के बीच तुलना की जाय तो तीनों लोकों का राज्य सीता के एक अंश जितना भी नहीं हो सकता।

१२. **सर्वान् भोगान् परित्यज्य भर्तृस्नेहबलात् कृता ।**
अचिन्तयित्वा कष्टानि प्रविष्टा निर्जनं वनम् ॥ सुन्दर १६।१९

सीता सम्पूर्ण ऐश्वर्यों को छोड़कर और संकटों की तनिक भी परवाह न करके पतिप्रेम के कारण निर्जन वन में चली आयी ।

१३. **सन्तुष्टा फलमूलेन भर्तृशुश्रूषणापरा ।**
या परां भजते प्रीतिं वनेऽपि भवने यथा ॥ सुन्दर १६।२०

सीता वन में फल मूल खाकर अपने पति की सेवा में तत्पर रहती थीं और वन में रहकर भी राजमहल जैसे सुख का अनुभव करती थीं।

१४. नैषा पश्यति राक्षस्यो नेमान् पुष्पफलद्रुमान् ।
एकस्थहृदया नूनं राममेवानुपश्यति ॥ सुन्दर १६।२५

सीता न तो राक्षसियों को देखती है और न ही फूलों, फलों और वृक्षों को । वे अपने मन को एकाग्र कर केवल राम का ही ध्यान करती हैं ।

१५. भर्ता नाम परं नार्याः शोभनं भूषणादपि ।
एषा हि रहिता तेन शोभनार्हा न शोभते ॥ सुन्दर १६।२६

पति, नारी के लिए किसी आभूषण की अपेक्षा भी अधिक शोभा का कारण होता है । पतिदेव से बिछुड़ी हुई सीता सुन्दर होने पर भी सुन्दर नहीं लग रही है ।

१६. उरुभ्यामुदरं छाद्य बाहुभ्यां च पयोधरौ ।
उपविष्टा विशालाक्षी रुदती वरवर्णिनी ॥ सुन्दर १९।३

सुन्दर कान्ति और बड़ी आंखों वाली सीता ने अपनी जांघों से पेट और हाथों से स्तनों को छिपा लिया और बैठे बेठे रोने लगी ।

१७. उपवासेन शोकेन ध्यानेन च भयेन च ।
परिक्षीणां कृशां दीनामल्पाहारां तपोधनाम् ॥ सुन्दर १९।२०

सीता, उपवास, शोक, चिन्ता और भय के कारण अत्यन्त दुर्बल, पतली और शोभाहीन हो गई थीं । वे बहुत कम भोजन करती थीं । तप ही उनका धन था ।

१८. न मां प्रार्थयितुं युक्तस्त्वं सिद्धिमिव पापकृत् ।
अकार्यं न मया कार्यमेकपत्न्या विगर्हितम् ॥ सुन्दर २१।४

जैसे पापी पुरुष किसी सिद्धि की कामना नहीं कर सकता उसी प्रकार रावण तू मुझे नहीं चाह सकता । मैं पतिव्रता नारी के लिए न करने योग्य निन्दनीय कार्य कभी नहीं करूंगी ।

१९. शक्या लोभयितुं नाहमैश्वर्येण धनेन वा ।
अनन्या राघवेणाहं भास्करेण यथा प्रभा ॥ सुन्दर २१।१५

रावण ! तुम मुझे ऐश्वर्यों से या धन से नहीं लुभा सकते । मैं तो श्रीराम से उसी भांति अभिन्न हूं जैसे सूर्य से प्रभा अलग नहीं होती।

२०. उपधाय भुजं तस्य लोकनाथस्य सत्कृतम् ।
कथं नामोपधास्यामि भुजमन्यस्य कस्यचित् ॥ सुन्दर २१।१६

मैंने समस्त संसार के स्वामी श्रीराम की भुजा पर सिर रखकर विश्राम किया है और श्रीराम ने मुझे सम्मानित किया है । अब मैं किसी परपुरुष की भुजा का आश्रय कैसे ले सकती हूं ।

२१. असन्देशात्तु रामस्य तपसश्चानुपालनात् ।
न त्वां कुर्मि दशग्रीव भस्म भस्मार्हतेजसा ॥ सुन्दर २२।२०

दशमुखरावण ! मेरा तेज ही तुझे भस्मसात् कर सकता है किन्तु श्रीराम के आदेश न होने से और अपनी तपस्या भंग न होने देने से मैं तुझे भस्म नहीं करती ।

२२. यदिदं लोकविद्विष्टमुदाहरत् सङ्गताः ।
नैतन्मनसि वाक्यं मे किल्विषं प्रतितिष्ठति ॥ सुन्दर २४।७

राक्षसियो तुम सब मुझ से लोक विरुद्ध बात कह रही हो । तुम्हारी यह पाप पूर्ण बात मेरे मन में तनिक भी नहीं स्थान पाती ।

२३. न मानुषी राक्षसस्य भार्या भवितुमर्हति ।
कामं खादत मां सर्वा न करिष्यामि वो वचः ॥ सुन्दर २४।८

मनुष्य कन्या किसी राक्षस की पत्नी नहीं हो सकती । तुम सब चाहे मुझे खा ही क्यों न जाओ किन्तु मैं तुम्हारी बात नहीं मानूंगी।

२४. दीनो वा राज्यहीनो वा यो मे भर्ता स मे गुरुः ।
तं नित्यमनुरक्तास्मि यथा सूर्यं सुवर्चला ॥ सुन्दर २४।९

मेरे पति चाहे दीन हों या राज्यहीन । वे मेरे पति हैं और पूज्य हैं । मेरा मन उनके प्रति सदा उसी प्रकार अनुरक्त रहता है जैसे सूर्य

के प्रति सुवर्चला का ।

२५. सर्वथा तेन हीनाया रामेण विदितात्मना ।
तीक्ष्णं विषमिवास्वाद्य दुर्लभं मम जीवनम् ॥ सुन्दर २५।१७

आत्मज्ञानवान् राम से बिछुड़ कर मेरा जीवित रह पाना उसी प्रकार असम्भव है जैसे हलाहल विष पानकर जीवित रहना ।

२६. चरणेनापि सव्येन न स्पृशेयं निशाचरम् ।
रावणं किं पुनरहं कामयेयम् विगर्हितम् ॥ सुन्दर २६।८

मैं अपने बांये पैर से भी किसी राक्षस का स्पर्श नहीं कर सकती। फिर उस लोकनिन्दित राक्षस रावण को चाहने का तो प्रश्न ही नहीं है।

२७. छिन्ना भिन्ना प्रभिन्ना वा दीप्ता वाग्नौ प्रदीपिता ।
रावणं नोपतिष्ठेयं किं प्रलापेन वश्चिरम् ॥ सुन्दर २६।१०

राक्षसियो तुम चाहे मेरे शरीर के टुकड़े टुकड़े कर दो या मुझे छेदो, चीरो अथवा आग में जला डालो किन्तु मैं रावण को स्वीकार नहीं करूंगी। अतः तुम अपनी यह बकवास बन्द करो ।

२८. रामेति रामेति सदैव बुद्ध्या विचिन्त्य वाचा ब्रुवती तमेव ।
तस्यानुरूपं च कथां तदर्थमेवं प्रपश्यामि तथा शृणोमि ॥

सुन्दर ३२।११

मैं अपनी बुद्धि से सदा राम का चिन्तन करती रहती हूं और उनका ही नाम पुकारती रहती हूं अतः मैं राम के विचार के अनुरूप कथा सुन और देख रही हूं ।

२९. अहं हि तस्याद्य मनोभवेन सम्पीडिता तद्गतसर्वभावा ।
विचिन्तयन्ती सततं तमेव तथैव पश्यामि तथा शृणोमि ॥

सुन्दर ३२।१२

मेरा हृदय सर्वदा राम में ही लगा रहता है अतः श्रीराम के दर्शन की लालसा से अत्यन्त पीड़ित रहता है । मैं सदा राम का ही स्मरण करती रहती हूं । अतः राम के अनुरूप ही बातें सुनती हूं और

देखती हूं ।

३०. साहं तस्याग्रतः तूर्णं प्रस्थिता वनचारिणी ।
नहि मे तेन हीनाया वासः स्वर्गेऽपि रोचते ॥ सुन्दर ३३।२७

मैं तुरन्त उनके आगे-आगे वन में चल पड़ी, क्योंकि श्रीराम के बिना मुझे स्वर्ग में भी रहना पसन्द नहीं है ।

३१. भर्तुर्भक्तिं पुरस्कृत्य रामादन्यस्य वानर ।
नाहं स्प्रष्टुं स्वतो गात्रमिच्छेयं वानरोत्तम ॥ सुन्दर ३७।६२

वानर श्रेष्ठ ! पति के प्रति अगाध भक्ति के कारण मैं राम के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष के शरीर का स्पर्श अपने शरीर से नहीं होने देना चाहती ।

३२. यदहं गात्रसंस्पर्शं रावणस्य गता बलात् ।
अनीशा किं करिष्यामि विनाथा विवशा सती ॥ सुन्दर ३७।६३

रावण के शरीर से मेरे देह का स्पर्श तो उसकी जबर्दस्ती के कारण हुआ । उस समय मैं अनाथ, विवश और पतिरहित थी ।

३३. यद्यस्ति पतिशुश्रूषा यद्यस्ति चरितं तपः ।
यदि वा त्वेकपतनीत्वं शीतो भव हनूमतः ॥ सुन्दर ५३।२७

यदि मेरी पति सेवा, चरित्र की तपस्या और पातिव्रत्य में कुछ शक्ति है तो हे अग्निदेव ! आप हनुमान् के लिए शीतल बन जाओ ।

३४. यदि मां वृत्तसम्पन्नां तत्समागमलालसाम् ।
स विजानाति धर्मात्मा शीतो भव हनूमतः ॥ सुन्दर ५३।२९

यदि धर्मात्मा श्रीराम विश्वास करंते हैं कि मैं सदाचार पूर्वक रह रही हूं और उनसे मिलने के लिए उत्कण्ठित हूं तो हे अग्निदेव आप हनुमान् जी के लिए शीतल बन जाओ ।

३५. अथवा चारुसर्वाङ्गी रक्षिता स्वेन तेजसा ।
न नश्यति कल्याणी नाग्निरग्नौ प्रवर्तते ॥ सुन्दर ५५।२२

अथवा सर्वाङ्गसुन्दरी सीता अपने चरित्र बल के तेज से सुरक्षित है । अतः कल्याणमयी सीता का नाश नहीं होगा क्योंकि अग्नि, अग्नि को नहीं जलाती है ।

३६. न हि धर्मात्मनस्तस्य भार्याममिततेजसः ।
स्वचरित्राभिगुप्तां तां स्प्रष्टुमर्हति पावकः ॥ सुन्दर ५५।२३

अत्यन्त तेजस्वी धर्मात्मा श्रीराम की धर्मपत्नी सीता जी को आग छू भी नहीं सकती, क्योंकि उनका चरित्रबल उनका रक्षक है ।

३७. तपसा सत्यवाक्येन अनन्यत्वाच्च भर्तरि ।
असौ विनिर्दहेदग्निं न तामग्निः प्रधक्ष्यति ॥ सुन्दर ५५।२८

सीता जी अपने तप, सत्याचरण और पति में अनन्य भक्ति के कारण अग्नि को जला सकती है किन्तु अग्नि सीता जी को नहीं जला सकती ।

३८. रक्ष्यमाणा सुघोराभिरनिन्दिता ।
एकवेणीधरा बाला रामदर्शनलालसा ॥ सुन्दर ५७।३९
उपवासपरिश्रान्ता मलिना जटिला कृशा ॥ सुन्दर ५७।४०

सीता जी एकवेणी बनाती हैं, उनके केश उलझकर जटा बन गये हैं । उनका हृदय श्रीराम के दर्शन के लिए लालायित है । उपवास के कारण वे बहुत दुर्बल और पतली हो गई हैं । अनिन्द्य सुन्दरी के चारों ओर भयंकर राक्षसी पहरा देती रहती हैं ।

३९. आर्यायाः सदृशं शीलं सीतायाः प्लवगर्षभाः ।
तपसा धारयेल्लोकान् क्रुद्धा वा निर्दहेदपि ॥ सुन्दर ५९।३

श्रेष्ठ वानरो ! जिस नारी का चरित्र पूजनीया सीता जी की भांति होगा वह सन्नारी अपनी तपस्या से सम्पूर्ण लोकों का भरण-पोषण कर सकती है और इन्हें जलाकर नष्ट भी कर सकती है ।

४०. न तदग्निशिखा कुर्यात् संस्पृष्टा पाणिना सती ।
जनकस्य सुता कुर्याद् यत् क्रोधकलुषीहता ॥ सुन्दर ५९।५

हाथ से छू जाने पर भी आग वह काम नहीं कर सकती जो काम क्रुद्ध जानकी सुता सीता कर सकती हैं ।

४१. अधःशय्या विवर्णाङ्गी पद्मिनीव हिमोदये ।
रावणाद् विनिवृत्तार्था मर्तव्यकृतनिश्चया ॥ सुन्दर ५९।२७

सीता जी भूमि पर सोती हैं उनके अंगों की कान्ति उसी प्रकार फीकी पड़ गई है जैसे शीत ऋतु में कमलिनी की शोभा नष्ट हो जाती है । उनका मन रावण के प्रति सर्वथा विपरीत है और उन्होंने मरने का निश्चय कर लिया है ।

४२. नियतः समुदाचारो भक्तिर्भर्तरि चोत्तमा ॥ सुन्दर ५९।२९

सीता जी में दृढ़ पातिव्रत्य है और अपने पति में अनन्य भक्ति है ।

४३. सा प्रकृत्यैव तन्वङ्गी तद्वियोगाच्च कर्शिता ।
प्रतिपत्पाठशीलस्य विद्येव तनुतां गता ॥ सुन्दर ५९।३१

सीता जी जन्म से ही दुबली पतली हैं और अब पति वियोग से बहुत दुर्बल हो गई हैं जैसे प्रतिपदा के दिन स्वाध्याय करने वाले की विद्या क्षीण हो जाती है ।

४४. तनुमध्या पृथुश्रोणी शरदिन्दुनिभानना ।
हेमबिम्बनिभा सौम्या मायेव मयनिर्मिता ॥ युद्ध १२।१४

सीता जी के शरीर का मध्यभाग पतला है उनकी पीठ के पीछे का भाग स्थूल है उनका मुख शरद् ऋतु के चन्द्रमा जैसा है, उनका रंग सोने जैसा है । वह सौम्य नारी सम्भवतः मायासुर की रचना माया ही है ।

४५. चारित्रसुखशीलत्वात् प्रविष्टासि मनो मम ॥ युद्ध ४८।२९

हे सीता ! तुम अपने निर्मल चरित्र के कारण मेरे मन में समा गई हो ।

४६. यदहं गात्रसंस्पर्शं गतास्मि विवशा प्रभो ।
कामकारो न मे तत्र दैवं तत्रापराध्यति ॥ युद्ध ११६।८

हे प्रभो ! अपनी विवशता के कारण ही रावण के शरीर से मेरे देह का स्पर्श हुआ है, मेरी अपनी इच्छा से नहीं । इसमें मेरा दुर्भाग्य ही कारण है ।

४७. मदधीनं तु यत् तन्मे हृदयं त्वयि वर्तते ।
पराधीनेषु गात्रेषु किं करिष्याम्यनीश्वरी ॥ युद्ध ११६।९

मेरा हृदय मेरे वश में है और यह मेरा हृदय आप में ही अनुरक्त है । मेरे अंग तो पराधीन थे और मैं बेबस थी ऐसे में मेरे देह का स्पर्श परपुरुष से हो गया मैं कर ही क्या सकती थी ।

४८. सह संवृद्धभावेन संसर्गेण च मानद ।
यदि ते ऽहं न विज्ञाता हता तेनास्मि शाश्वतम् ॥ युद्ध ११६।१०

दूसरों का आदर करने वाले नाथ ! हम दोनों की प्रीति साथ-साथ बढ़ी है । हम सदा एक साथ रहे हैं । इतने पर भी यदि आप मेरा चरित्र भली भांति नहीं समझ सके तो मैं सदा के लिए मारी गई ।

४९. त्वया तु नृपशार्दूल रोषमेवानुवर्तता ।
लघुनेव मनुष्येण स्त्रीत्वमेव पुरस्कृतम् ॥ युद्ध ११६।१४

श्रेष्ठ राजन् ! आपने तो ओछे मनुष्यों की भांति केवल क्रोध का सहारा लेकर मेरे चरित्र की अवहेलना कर दी और त्रियाचरित्र पर ही ध्यान दिया ।

५०. अपदेशो मे जनकान्नोत्पत्तिः वसुधातलात् ।
मम वृत्तं च वृत्तज्ञ बहु ते न पुरस्कृतम् ॥ युद्ध ११६।१५

सदाचार के ज्ञाता ! मैं यज्ञभूमि से उत्पन्न हुई हूं जनक से नहीं, अतः मेरा जन्म दिव्य है साधारण नहीं, किन्तु आप ने इस पृष्ठभूमि पर ध्यान ही नहीं दिया ।

५१. न प्रमाणीकृतः पाणिर्बाल्ये मम निपीडितः ।
मम भक्तिश्च शीलं च सर्वं ते पृष्ठतः कृतम् ॥ युद्ध ११६।१६

आपने बाल्यावस्था में मेरा पाणिग्रहण किया था, आपने यह बात भी भुला दी । आपके प्रति मेरी जो अनन्य भक्ति है और मेरा जैसा शील-स्वभाव है उस सब को भी आपने भुला डाला ।

५२. चितां मे कुरु सौमित्रे व्यसनस्यास्य भेषजम् ।
मिथ्यापवादोपहता नाहं जीवितुमुत्सहे ॥ युद्ध ११६।१८

लक्ष्मण ! मेरे लिए चिता तैयार कर दो, क्योंकि मिथ्या कलंक से कलंकित मैं जीवित नहीं रहना चाहती ।

५३. अधोमुखं स्थितं रामं ततः कृत्वा प्रदक्षिणम् ।
उपावर्तत वैदेही दीप्यमानं हुताशनम् ॥ युद्ध ११६।२३

सिर नीचा किये खड़े श्रीराम की परिक्रमा करके सीता जी दीप्त अग्नि के पास चली गईं ।

५४. यथा मे हृदयं नित्यं नापसर्पति राघवात् ।
तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः ॥ युद्ध ११६।२५

यदि मेरा हृदय क्षण भर के लिए भी श्रीराम से कभी विमुख न हुआ हो तो समस्त संसार के साक्षी अग्निदेव सब ओर से मेरी रक्षा करें।

५५. यथा मां शुद्धचारित्रां दुष्टां जानाति राघवः ।
तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः ॥ युद्ध ११६।२६

यद्यपि मेरा चरित्र उज्ज्वल है किन्तु श्रीराम मुझे पतिता समझ रहे हैं, यदि मेरा चरित्र निष्कलंक है तो हे अग्निदेव सब ओर से मेरी रक्षा कीजिये ।

५६. कर्मणा मनसा वाचा यथा नातिचराम्यहम् ।
राघवं सर्वधर्मज्ञं तथा मां पातु पावकः ॥ युद्ध ११६।२७

यदि मैंने सभी धर्मों के जानने वाले श्रीराम का अपने किसी कार्य से, मन से और वाणी से अतिक्रमण न किया हो तो अग्निदेव मेरी

रक्षा करें ।

५७. आदित्यो भगवान् वायुर्दिशश्चन्द्रस्तथैव च ।
अहश्चापि तथा सन्ध्ये रात्रिश्च पृथिवी तथा ॥
यथान्येऽपि विजानन्ति तथा चारित्रसंयुताम् ॥ युद्ध ११६।२८

भगवान् सूर्य, वायु, दिशाएं, चन्द्रमा, दिन-रात, दोनों सन्ध्या पृथिवी-माता तथा अन्य देवता भी यदि मुझे शुद्ध चरित्र से सम्पन्न मानते हों तो अग्निदेव मेरी रक्षा करें ।

५८. सा तप्तनवहेमाभा तप्तकाञ्चनभूषणा ।
पपात ज्वलनं दीप्तं सर्वलोकस्य सन्निधौ ॥ युद्ध ११६।३१

तपाये हुए नये सुवर्ण सी कान्तिवाली और सोने को तपाकर बनाये गये आभूषणों से विभूषित सीता सब के देखते देखते अग्नि में प्रविष्ट हो गई ।

५९. अब्रवीत् तु तदा रामं साक्षी लोकस्य पावकः ।
एषा ते राम वैदेही पापमस्यां न विद्यते ॥ युद्ध ११८।५

तब सम्पूर्ण जगत् के साक्षी अग्निदेव ने कहा—हे राम ! यह आपकी धर्मपत्नी सीता हैं । इनमें कोई पाप या दोष नहीं है ।

६०. नैव वाचा न मनसा नैव बुद्ध्या न चक्षुषा ।
सुवृत्ता वृत्तशौटीर्यं न त्वामचरच्छुभा ॥ युद्ध ११८।६

उत्कृष्ट चरित्र वाली इन सीता ने अपने मन, वाणी, बुद्धि और चक्षुओं से कभी भी किसी पुरुष को नहीं अपनाया । इन्होंने सदा आपका ही स्मरण किया है ।

६१. प्रलोभ्यमाना विविधं तर्ज्यमाना च मैथिली ।
नाचिन्तयत तद्रक्षस्त्वद्गतेनान्तरात्मना ॥ युद्ध ११८।९

सीता को भांति भांति के लालच दिये गये, उन्हें डराया धमकाया भी गया, किन्तु आप के चिन्तन में लगे इनके हृदय ने कभी रावण पर ध्यान नहीं दिया ।

६२. विशुद्धभावां निष्पापां प्रतिगृह्णीष्व मैथिलीम् ।
न किञ्चिदभिधातव्या अहमाज्ञापयामि ते ॥ युद्ध ११८।१०

सीता जी का हृदय शुद्ध है, ये निष्पाप हैं आप इन्हें स्वीकार कीजिये। मैं आज्ञा देता हूं कि आप सीता को कभी खरी खोटी बात न कहें ।

६३. अवश्यं चापि लोकेषु सीता पावनमर्हति ।
दीर्घकालोषिता हीयं रावणान्तःपुरे शुभा ॥ युद्ध ११८।१३

शुभलक्षणा सीता को विवश होकर बहुत समय तक रावण के अन्तःपुर में रहना पड़ा। इसलिए सीता की पवित्रता का लोगों को विश्वास दिलाने के लिए उनकी अग्निपरीक्षा आवश्यक थी ।

६४. बालिशो बत कामात्मा रामो दशरथात्मजः ।
इति वक्ष्यति मां लोको जानकीमविशोध्य हि ॥ युद्ध ११८।१४

यदि मैं सीता को अग्निपरीक्षा के बिना स्वीकार कर लेता तो लोग यही कहते कि दशरथ का पुत्र राम मूर्ख और कामातुर है ।

६५. अनन्यहृदयां सीतां मच्चित्तपरिरक्षिणीम् ।
अहमप्यवगच्छामि मैथिलीं जनकात्मजाम् ॥ युद्ध ११८।१५

मैं भी जानता हूं कि जनकपुत्री सीता का हृदय और मन सदा मुझ में ही लगा रहता है । सीता सदैव मेरे मन के अनुसार ही आचरण करती है ।

६६. प्रत्ययार्थं तु लोकानां त्रयाणां सत्यसंश्रयः ।
उपेक्षे चापि वैदेहीं प्रविशन्तीं हुताशनम् ॥ युद्ध ११८।१७

तीनों लोकों के प्राणियों को विश्वास दिलाने के लिए मैंने एकमात्र सत्य का आश्रय लेकर सीता को अग्नि में प्रवेश करने से नहीं रोका।

६७. न शक्तः सुदुष्टात्मा मनसाऽपि हि मैथिलीम् ।
प्रधर्षयितुमप्राप्यां दीप्ताग्निशिखामिव ॥ युद्ध ११८।१८

सीता जी किसी अन्य पुरुष के लिए प्रज्वलित अग्निशिखा की भांति अप्राप्य हैं अतः वह नीच रावण मन से भी सीता पर अत्याचार

नहीं कर सकता था ।

६८. नेयमर्हति वैक्लव्यं रावणान्तःपुरे सती ।
अनन्या हि मया सीता भास्करस्य प्रभा यथा ॥ युद्ध ११८।१९

सती-साध्वी सीता रावण के अन्तःपुर में भी घबरा नहीं सकती थीं क्योंकि ये मुझ से उसी तरह अलग नहीं की जा सकतीं जैसे सूर्य से उसकी प्रभा ।

६९. विशुद्धा त्रिषु लोकेषु मैथिली जनकात्मजा ।
न विहातुं मया शक्या कीर्तिरात्मवता यथा ॥ युद्ध ११८।२०

मिथिलेशकुमारी सीता तीनों लोकों में परम-पवित्र हैं । जैसे मनस्वी पुरुष अपनी कीर्ति नहीं छोड़ सकता उसी प्रकार मैं भी सीता को नहीं त्याग सकता ।

७०. सीताऽपि देवकार्याणि कृत्वा पौर्वाह्णिकानि वै ।
श्वश्रूणामकरोत् पूजां सर्वासामविशेषतः ॥ उत्तर ४२।२८

सीता भी दिन में दोपहर से पहले के समय में देवपूजन आदि कार्य करके सब सासुओं की समान रूप से सेवा करती थी ।

७१. मामिकेयं तनुर्नूनं सृष्टा दुःखाय लक्ष्मण ।
धात्रा यस्यास्तथा मेऽद्य दुःखमूर्तिः प्रदृश्यते ॥ उत्तर ४८।३

लक्ष्मण ! निश्चय ही विधाता ने मेरा शरीर केवल दुःख भोगने के लिए ही बनाया है । इसीलिए आज सारे दुःख मेरे सामने मूर्तिमान् खड़े हैं ।

७२. किं नु वक्ष्यामि मुनिषु कर्म चासत्कृतं प्रभो ।
कस्मिन् वा कारणे त्यक्ता राघवेण महात्मना ॥ उत्तर ४८।७

प्रभो ! मुनिजनों के यह पूछने पर कि महात्मा राम ने तुम्हें किस अपराध के कारण त्याग दिया है ? मैं उन्हें अपना कौन सा अपराध बताऊंगी ?

७३. जानासि यथा शुद्धा सीता तत्त्वेन राघव ।
भक्त्या च परमा युक्ता हिता च तव नित्यशः ॥ उत्तर ४८।१२

हे राम ! आप निश्चय ही जानते हैं कि सीता का चरित्र पवित्र है । वे सदा आपके हित में तत्पर रहती हैं और आपके प्रति प्रेम बनाये हुए हैं ।

७४. अहं त्यक्ता च ते वीर अयशोभीरुणा जने ।
यच्च ते वचनीयं स्यादपवादः समुत्थितः ॥ उत्तर ४८।१३
मया च परिहर्तव्यं त्वं हि मे परमा गतिः ।

वीर ! आपने अपयश से डरकर ही मुझे त्यागा है । प्रजाजन आपकी निन्दा कर रहे हैं और मेरे कारण लोकापवाद फैल रहा है उसे दूर करना मेरा भी कर्त्तव्य है, क्योंकि आप ही मेरे परम आश्रयस्थल हैं ।

७५. वक्तव्यश्चैव नृपतिर्धर्मेण सुसमाहितः ॥ उत्तर ४८।१४
यथा भ्रातृषु वर्तेथास्तथा पौरेषु नित्यदा ।
परमो ह्येष धर्मस्ते तस्मात् कीर्तिरनुत्तमा ॥ उत्तर ४८।१५

लक्ष्मण ! तुम महाराज से कहना कि आप धर्मानुसार बड़ी साव-धानी से पुरवासियों से वैसा ही व्यवहार करें जैसा अपने भाइयों के साथ करते हैं । यही आपका परम धर्म है और इसी से आपको अक्षय यश प्राप्त होगा ।

७६. यत्तु पौरजने राजन् धर्मेण समवाप्नुयात् ।
अहं तु नानुशोचामि स्वशरीरं नरर्षभ ॥ उत्तर ४८।१६

राजन् ! पुरवासियों से धर्मानुसार व्यवहार करने से आपको जो पुण्य मिलेगा वही आपके लिए उचित है । नरश्रेष्ठ ! मुझे अपने शरीर की कुछ चिन्ता नहीं है ।

७७. बहुवर्षसहस्राणि तपश्चर्या मया कृता ।
नोपाश्नीयां फलं तस्या दुष्टेयं यदि मैथिली ॥ उत्तर ९६।२०

मैंने कई हजार वर्ष तक तपस्या की है । यदि सीता जी में कोई चरित्र दोष हो तो मुझे इस तपस्या का फल न मिले ।

७८. मनसा कर्मणा वाचा भूतपूर्वं न किल्बिषम् ।
तस्याहं फलमश्नामि अपापा मैथिली यदि ॥ उत्तर ९६।२१

मैंने मन, वचन और कर्म से कभी भी कोई पाप नहीं किया है यदि सीता जी का चरित्र निष्कलंक हो तभी मुझे अपने पुण्य कर्मों का फल प्राप्त हो ।

७९. अहं पञ्चसु भूतेषु मनः षष्ठेषु राघव ।
विचिन्त्य सीता शुद्धेति जग्राह वननिर्झरे ॥ उत्तर ९६।२२

हे राम ! मैंने अपनी पांचों ज्ञानेन्द्रियों और छठी इन्द्रिय मन से भली भांति यह समझ कर कि सीता निष्पाप है इसे वन के झरने के पास अपने संरक्षण में लिया था ।

८०. इयं शुद्धसमाचारा अपापा पतिदेवता ।
लोकापवादभीतस्य प्रत्ययं तव दास्यति ॥ उत्तर ९६।२३

सीता का चरित्र और आचरण सर्वथा पवित्र है, यह निष्पाप है और पति को ही अपना देवता मानती है । लोकापवाद से भयभीत आपको यह अपने पवित्र-चरित्र का विश्वास दिलायेगी ।

८१. तस्मादियं नरवरात्मज शुद्धभावा
दिव्येन दृष्टिविषयेण मया प्रविष्टा ।
लोकापवादकलुषीकृतचेतसा या
त्यक्ता त्वया प्रियतमा विदितापि शुद्धा ॥
उत्तर ९६।२४

नरश्रेष्ठ ! मैंने अपनी दिव्य दृष्टि से जान लिया था कि सीता निष्पाप है इसीलिए मैंने इसे अपने आश्रम में प्रवेश दिया । आप ने विशुद्ध चरित्रवती जानते हुए भी लोकनिन्दा के डर से अपनी प्रियतमा सीता को त्याग दिया ।

८२. सेयं लोकभयाद् ब्रह्मन्नपापेत्यभिजानता ।
परित्यक्ता मया सीता तद् भवान् क्षन्तुमर्हति ॥ उत्तर ९७।४

मैंने सीता को निष्कलंक जानते हुए भी लोकनिन्दा के भय से

त्याग दिया । ब्रह्मन् ! आप मेरे इस अपराध को क्षमा कीजिये ।

८३. यथाहं राघवादन्यं मनसाऽपि न चिन्तये ।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥ उत्तर ९७।१४

मैं श्रीराम के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष का मन से भी चिन्तन नहीं करती, यदि मेरी यह बात सत्य है तो पृथिवी देवी मुझे अपनी गोद में स्थान दें ।

८४. मनसा कर्मणा वाचा यथा रामं समर्चये ।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥ उत्तर ९७।१५

यदि मैं मन, वचन और कर्म से श्रीराम की ही आराधना करती हूं तो पृथिवी माता मुझे अपनी गोद में स्थान दें ।

८५. यथैतत् सत्यमुक्तं मे वेद्मि रामात् परं न च ।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥ उत्तर ९७।१६

श्रीराम के अतिरिक्त मैं किसी पुरुष को नहीं जानती, यदि मेरी यह बात सत्य हो तो पृथिवी माता मुझे अपनी गोद में लेने की कृपा करें ।

सुभाषित (प्रकीर्ण)

१. धर्मे रताः सत्पुरुषैः समेतास्तेजस्विनो दानगुणप्रधानाः ।
अहिंसका वीतमलाश्च लोके भवन्ति पूज्या मुनयः प्रधानाः ॥

अयोध्या १०९।३६

जो लोग धर्माचरण करते हैं, सज्जनों की संगति करते हैं, खूब दान देते हैं, हिंसा नहीं करते, और जिनके चरित्र में कोई अपवाद या निन्दा नहीं है ऐसे श्रेष्ठ मननशील व्यक्तियों का संसार में आदर किया जाता है ।

२. न ह्यनिष्टोऽनुशास्यते ॥ अरण्य १०।२

जो अपना प्रिय न हो उसे कोई हितकारी सलाह नहीं देता ।

३. क्रूरैरनार्यैः परिहासः न कार्यः कथञ्चन ॥ अरण्य १८।१९

क्रूर और दुष्ट लोगों के साथ कभी भी हंसी मजाक नहीं करनी चाहिए ।

४. गतोदके सेतुबन्धो न कल्याणि विधीयते ॥ अयोध्या ९।५४

हे कल्याणि ! पानी बह जाने पर उसे रोकने के लिए बांध नहीं बनाया जाता ।

५. स निरर्थं गतजले सेतुं बन्धितुमिच्छति ॥ अयोध्या १८।२३

वह व्यर्थ ही पानी बह जाने के बाद उसे रोकने के लिए बांध बनाना चाहता है ।

६. दुर्लभं हि सदा सुखम् ॥ अयोध्या १८।१३

मनुष्य को सदा सुख नहीं मिलता रहता है ।

७. मृदुर्हि परिभूयते ॥ अयोध्या २१।११

नम्र और दुर्बल व्यक्ति का सभी अपमान करते हैं ।

८. प्रत्यक्षं यत् तदातिष्ठ परोक्षं पृष्ठतः कुरु ॥ अयोध्या १८।२३

जो लाभ अभी मिल रहा है उससे फायदा उठाना चाहिए, भविष्य में मिलने वाले लाभ की चिन्ता मत कर ।

९. सुजीवं नित्यशस्तस्य यः परैरुपजीव्यते ।
राम तेन तु दुर्जीवं यः परानुपजीवति ॥ अयोध्या १०५।७

हे राम ! जिसके पास आकर लोग जीवन-निर्वाह करते हैं उसी का जीवन श्रेष्ठ है । दूसरों के आश्रित रहने वाले का जीवन दुखी होता है ।

१०. कायेन कुरुते पापं मनसा सम्प्रधार्य तत् ।
अनृतं जिह्वया चाह त्रिविधं कर्म पातकम् ॥ अयोध्या १०९।२१

मनुष्य सब से पहले मन में पाप करने की बात सोचता है, फिर अपने साथियों से इसके बारे मे चर्चा करता है और फिर अपने शरीर से बुरा काम करता है । इस प्रकार मनुष्य कोई भी बुरा काम मन वचन

और कर्म तीनों से ही करता है ।

११. न हि निम्बात् स्रवेत् क्षौद्रम् ॥ अयोध्या ३५।१७

नीम के पेड़ से शहद नहीं टपकता ।

१२. यामिच्छेत् पुनरायातं नैनं दूरमनुव्रजेत् ॥ अयोध्या ४०।५०

जिस प्रियजन के लिए यह इच्छा हो कि वह जल्दी ही लौट आये तो उसे छोड़ने के लिए दूर तक नहीं जाना चाहिए ।

१३. जानन्नपि च किं कुर्यादशक्तश्चापरिक्रमः ।
भिद्यमानमिवाशक्तस्त्रातुमन्यो नगो नगम् ॥ अयोध्या ६३।४२, ४३

कमजोर और साधनहीन मनुष्य संकट आया हुआ जानकर भी उसी प्रकार कुछ नहीं कर सकता जैसे आंधी से टूटते हुए वृक्ष को दूसरे पेड़ नहीं बचा सकते ।

१४. अनागतविधानं तु कर्त्तव्यं शुभमिच्छता ।
आपदं शङ्कमानेन पुरुषेण विपश्चिता ॥ अरण्य २४।११

अपनी भलाई चाहने वाले बुद्धिमान् मनुष्य को संकट की आशंका होने पर आपत्ति आने से पहले ही उससे बचने का उपाय कर लेना चाहिए।

१५. न चिरं पापकर्माणः क्रूरा लोकजुगुप्सिताः ।
ऐश्वर्यं प्राप्य तिष्ठन्ति शीर्णमूला इव द्रुमाः ॥ अरण्य २९।७

पापी, अत्याचारी और लोकनिन्दित पुरुष ऐश्वर्यशाली होने पर भी बहुत समय तक प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं कर सकता जैसे खोखली जड़ वाला वृक्ष देर तक खड़ा नहीं रह सकता ।

१६. सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः ।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥ अरण्य ३७।२

हे राजा ! सदा मीठी मीठी बातें बनाने वाले लोग हर जगह मिल जाते हैं किन्तु अच्छी न लगने पर भी हितकारी बात कहने वाले और ऐसी बात को सुनने वाले मनुष्य बहुत कम होते हैं ।

१७. परेतकल्पा हि गतायुषो नरा हितं न गृह्णन्ति सुहृद्भिरीरितम्॥

अरण्य ४१।२०

जिनकी आयु समाप्त होने वाली है ऐसे मरणासन्न मनुष्य अपने मित्रों की हितकारी बात नहीं मानते हैं ।

१८. न तत् समाचरेद् धीरो यत् परोऽस्य विगर्हयेत् ।
यथाऽऽत्मनस्तथान्येषां दारा रक्ष्या विमर्शनात् ॥ अरण्य ५०।८

बुद्धिमान् मनुष्य को ऐसा कोई काम नहीं करना चाहिए जिस की लोग निन्दा करें । जैसे अपनी स्त्रियों की पराये लोगों से रक्षा की जाती है उसी प्रकार दूसरे लोगों की स्त्रियों की भी रक्षा करनी चाहिए ।

१९. यत् कृत्वा न भवेद् धर्मो न कीर्त्तिर्न यशो ध्रुवम् ।
शरीरस्य भवेत् खेदः कस्तत् कर्म समाचरेत् ॥ अरण्य ५०।१९

जो काम करने से न तो धर्म होता हो और न कीर्त्ति या अक्षय यश ही मिलता हो उल्टे शरीर को कष्ट ही हो तो ऐसा काम कौन करना चाहेगा ?

२०. अनुबन्धमजानन्तः कर्मणामविचक्षणाः ।
शीघ्रमेव विनश्यन्ति यथा त्वं विनश्यसि ॥ अरण्य ५१।२६

अपने कर्मों का परिणाम न ज़ानने वाले मूर्ख मनुष्य जल्दी ही नष्ट हो जाते हैं । इसलिए रावण तू भी जल्दी ही मर जायेगा ।

२१. नास्ति धर्मः कुतः सत्यं नार्जवं नानृशंसता ।
यत्र रामस्य वैदेहीं सीतां हरति रावणः ॥ अरण्य ५२।३९

जिस संसार में रावण, श्रीराम की धर्मपत्नी विदेहकुमारी सीता का अपहरण कर ले जा रहा है वहां धर्म, सत्य, दया और सरल व्यवहार नष्ट हो गया है ।

२२. मृत्युकाले यथा मर्त्यो विपरीतानि सेवते ।
मुमूर्षूणां तु सर्वेषां यत् पथ्यं तन्न रोचते ॥ अरण्य ५३।१७

मरने के समय मनुष्य स्वास्थ्य नष्ट करने वाली वस्तुएं खाने लगता

है क्योंकि मरणासन्न पुरुषों को हितकारक भोजन और नेक सलाह अच्छी नहीं लगती ।

२३. यदा विनाशो भूतानां दृश्यते कालचोदितः ।
तदा कार्ये प्रमाद्यन्ति नरा कालवशं गताः ॥ अरण्य ५६।१६

जब काल की प्रेरणा से प्राणियों का विनाश पास आने लगता है तब वे मृत्यु के अधीन हुए हर काम में आलस्य करने लगते हैं ।

२४. आश्वसिहि नरश्रेष्ठ प्राणिनः कस्य नापदः ।
संस्पृशन्त्यग्निवद् राजन् क्षणेन व्यपयान्ति च ॥ अरण्य ६६।६

हे श्रेष्ठपुरुष राजा राम ! आप धैर्य धारण कीजिये । इस संसार में किस प्राणी पर आपत्तियां नहीं आतीं ? मुसीबतें आग की तरह हमें तपा कर कुछ ही देर बाद समाप्त हो जाती हैं ।

२५. त्वद्विधा न हि शोचन्ति सततं सर्वदर्शनाः ।
सुमहत्स्वपि कृच्छ्रेषु रामानिर्विण्णदर्शनाः ॥ अरण्य ६६।१५

राम ! आप जैसे सर्वज्ञ पुरुष बड़ी से बड़ी विपत्तियां आने पर भी शोक नहीं करते और उनका विवेक नष्ट नहीं होता ।

२६. त्वद्विधा बुद्धिसम्पन्ना महात्मानो नरर्षभाः ।
आपत्सु न प्रकम्पन्ते वायुवेगैरिवाचलाः ॥ अरण्य ६७।७, ८

आप जैसे बुद्धिमान् नरश्रेष्ठ महापुरुष आपत्तियां आने पर उसी प्रकार अविचलित रहते हैं जैसे आंधी में पर्वत ।

२७. बुद्ध्या युक्ता महाप्राज्ञा विजानन्ति शुभाशुभे ॥ अरण्य ६६।१६

बुद्धि और विवेक से युक्त महापुरुष भले बुरे को भली भांति जानते हैं ।

२८. सर्वत्र खलु दृश्यन्ते साधवो धर्मचारिणः ।
शूराः शरण्याः सौमित्रे तिर्यग्योनिगतेष्वपि ॥ अरण्य ६८।२४

वीर, शरणागत की रक्षा करने वाले और धर्म का पालन करने

वाले सज्जन सभी जगह मिल जाते हैं । पशु पक्षी योनियों में भी ऐसे प्राणी होते हैं ।

२९. नेदृशानां मतिर्मन्दा भवत्यकलुषात्मनाम् ॥ किष्किन्धा १।११५

आप जैसे निष्पाप हृदय पुरुषों की बुद्धि सदा साथ देती है ।

३०. यो हि मत्तं प्रमत्तं वा भग्नं वा रहितं कृशम् ।
हन्यात् स भ्रूणहा लोके त्वद्विधं मदमोहितम् ॥ किष् ११।३६

जो व्यक्ति नशे में धुत्त, असावधान, युद्ध के मैदान से भागे हुए, शस्त्ररहित, कमजोर और तुम्हारे जैसे मदहोश पुरुष का वध करता है उसे भ्रूणहत्या का पाप लगता है ।

३१. भूमिर्हिरण्यं रूपं च विग्रहे कारणानि च ॥ किष्किन्धा १६।३१

जमीन, रुपया, पैसा और रूपवती स्त्री झगड़े की जड़ होते हैं।

३२. न चातिप्रणयः कार्यः कर्त्तव्योऽप्रणयश्च ते ।
उभयं हि महादोषं तस्मादन्तरदृग् भव ॥ किष्किन्धा २२।२३

हमें न तो किसी से बहुत प्रेम करना चाहिए और न ही बहुत कम स्नेह । अत्यधिक प्रेम और सर्वथा प्रेम न होना, दोनों ही तरह का व्यवहार अनुचित होता है । इसलिए मनुष्य को अन्तर्दृष्टि सम्पन्न रहकर संसार की असारता का ध्यान रखना चाहिए ।

३३. अच्छलं मित्रभावेन सतां दारावलोकनम् ॥ किष्किन्धा ३३।६१

सज्जनों द्वारा स्त्रियों को माता, बहिन या पुत्री की दृष्टि से देखना अनुचित नहीं होता ।

३४. अर्थिनः कार्यनिर्वृत्तिमकर्तुरपि यश्चरेत् ।
तस्य स्यात् सफलं जन्म किं पुनः पूर्वकारिणः ॥ किष् ४३।७

जिस व्यक्ति ने हमारा पहले कोई काम न भी किया हो यदि वह भी किसी काम के लिए आये तो उसका काम कर देने से हमारा जन्म सफल हो जाता है । यदि किसी ने हमारा उपकार किया हो तो उसका काम तो अवश्य करना ही चाहिए ।

३५. न क्षमं चापराद्धानां गमनं स्वामिपार्श्वतः ॥ किष्किन्धा ५३।२३

अपराधी व्यक्तियों को अपने मालिक के पास नहीं जाना चाहिए।

३६. कर्त्तव्यमकृतं कार्यं सतां मन्युमुदीरयेत् ॥ सुन्दर १।९७

यदि करने योग्य कार्य न किया जाय तो सज्जनों को क्रोध आ जाता है ।

३७. कृते च प्रतिकर्तव्यमेष धर्मः सनातनः ॥ सुन्दर १।११३

यदि किसी ने हमारा उपकार किया हो तो हमें भी उसका उपकार करना चाहिए, यही सदा से चली आ रही रीति है ।

३८. अतिथिः किल पूजार्हः प्राकृतोऽपि विजानता ॥ सुन्दर १।११९

बुद्धिमान् पुरुष को साधारण अतिथि का भी सत्कार करना चाहिए।

३९. धृतिर्दृष्टिर्मतिर्दाक्ष्यं स कर्मसु न सीदति ॥ सुन्दर १।२०१

धैर्य, सूझबूझ, बुद्धिमत्ता और कार्यकुशलता इन चारों गुणों वाला मनुष्य अपने कामों में सफलता प्राप्त करता है ।

४०. समये सौम्य तिष्ठन्ति सत्त्ववन्तो महाबलाः ॥ सुन्दर ३।४४

हे सौम्य ! महाबली और सत्त्वगुण प्रधान पुरुष शास्त्र की मर्यादा का पालन करते हैं ।

४१. विनाशे बहवो दोषा जीवन प्राप्नोति भद्रकम् ॥ सुन्दर १३।४७

जीवन नष्ट हो जाने पर अनेक कठिनाइयां आ जाती हैं किन्तु मनुष्य के जीवित रहने पर उसका कभी न कभी कल्याण होता ही है ।

४२. आम्नायानामयोगेन विद्यां प्रशिथिलामिव ॥ सुन्दर १५।३८

शास्त्रों और ग्रन्थों को बार बार न पढ़ने से मनुष्य अपनी विद्या भूल जाता है । **अनभ्यासे विषं विद्या ॥**

४३. संस्कारेण यथा हीनां वाचमर्थान्तरं गताम् ॥ सुन्दर १५।३९

व्याकरण आदि से रहित वाक्य का अर्थ समझ में नहीं आता है।

४४. यदतीतं पुनर्नैति स्त्रोतः स्त्रोतस्विनामिव ॥ सुन्दर २०।१२

बीता हुआ अवसर और समय आदि नदियों के प्रवाह की तरह फिर लौटकर नहीं आता ।

४५. अतुष्टं स्वेषु दारेषु चपलं चपलेन्द्रियम् ।
नयन्ति निकृतिप्रज्ञं परदाराः पराभवम् ॥ सुन्दर २१।८

चंचल चित्त और चंचल इन्द्रियों वाला मूर्ख मनुष्य यदि अपनी स्त्रियों से सन्तुष्ट नहीं होता तो उसे परायी स्त्रियां मुसीबत में डाल देती हैं ।

४६. शक्यं संदर्शने स्थातुं शुना शार्दूलयोरिव ॥ सुन्दर २१।३१

क्या कुत्ता दो बाघों के सामने कभी ठहर सकता है ?

४७. सर्वत्रातिकृतं भद्रे व्यसनायोपकल्पते ॥ सुन्दर २४।२१

भद्रे ! अति करना तो सभी जगह दुःखदायी होता है । **"अति सर्वत्र वर्जयेत्"** ।

४८. दृश्यमाने भवेत् प्रीतिः सौहृदं नास्त्यदृश्यतः ॥ सुन्दर २६।४१

जो मित्र और सम्बन्धी आंखों के सामने रहते हैं उनके साथ स्नेह बना रहता है । आंख से ओझल हो जाने पर मित्रता भी समाप्त हो जाती है ।

४९. एति जीवन्तमानन्दो नरं वर्षशतादपि ॥ सुन्दर ३४।६

जीवित पुरुष को सौ वर्ष बाद भी आनन्द प्राप्त होता है ।

५०. अहिरेव ह्यहेः पादान् विजानाति न संशयः ॥ सुन्दर ४२।९

निस्सन्देह सांप ही सांप के पैर पहिचानता है ।

५१. न वर्धमानोऽग्निरुपेक्षितुं क्षमः ॥ सुन्दर ४७।२९

बढ़ती हुई आग की उपेक्षा कभी नहीं करनी चाहिए ।

५२. नाग्निरग्नौ प्रवर्तते ॥ सुन्दर ५५।२२

आग, आग को नहीं जलाती ।

५३. परेषां सहसावज्ञा न कर्त्तव्या कथञ्चन ॥ युद्ध ९।१२

दूसरों की शक्ति की किसी भी तरह अवहेलना नहीं करनी चाहिए।

५४. अवश्यं प्राणिनां प्राणा रक्षितव्या यथाबलम् ॥ युद्ध ९।१४

प्रत्येक प्राणी को अपने प्राणों की रक्षा यथाशक्ति करनी ही चाहिए।

५५. पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च राघव ।
स्वभावे सौम्य तिष्ठन्ति शाश्वतं मार्गमाश्रिताः ॥ युद्ध २२।२६

हे सौम्य राम ! पृथिवी, वायु, आकाश, जल और तेज ये पांच तत्त्व सदा अपने स्वभाव के अनुसार आचरण करते हैं । प्रकृति के ये मूल तत्त्व अपने सनातन मार्ग पर चलते रहते हैं ।

५६. गतं तु नानुशोचयन्ति गतं तु गतमेव हि ॥ युद्ध ६३।२५

बुद्धिमान् पुरुष बीती बात पर शोक नहीं करते, जो बीत गई सो बीत गई ।

५७. गुणवान् वा परजनः स्वजनो निर्गुणोऽपि वा ।
निर्गुणः स्वजनः श्रेयान् यः परः पर एव सः ॥ युद्ध ८७।१५

गुणशाली पराये व्यक्ति और गुणहीन अपने व्यक्ति के बीच निर्गुण अपना ही दूसरों की अपेक्षा अच्छा होता है । क्योंकि पराया व्यक्ति पराया ही रहता है वह कभी अपना नहीं हो सकता ।

५८. यः स्वपक्षं परित्यज्य परपक्षं निषेवते ।
स स्वपक्षे क्षयं याते पश्चात् तैरेव हन्यते ॥ युद्ध ८७।१६

जो अपने पक्ष को छोड़कर दूसरी ओर जा मिलता है । वह अपने लोगों का नाश हो जाने पर पराये पक्ष द्वारा मार दिया जाता है ।

५९. कार्याणां कर्मणा पारं यो गच्छति स बुद्धिमान् ॥ युद्ध ८८।१३

जो करने वाले काम पूरे कर दिखाता है वही व्यक्ति बुद्धिमान् होता है ।

६०. अचक्षुर्विषयश्चन्द्रः कां प्रीतिं जनयिष्यति ॥ युद्ध १०१।११

अन्धे के सामने चन्द्रमा की चांदनी बिखरी रहने पर भी उसे क्या प्रसन्नता होगी ?

६१. त्यजेमां नरशार्दूल बुद्धिं वैक्लव्यकारिणीम् ।
शोकसञ्जननीं चिन्तां तुल्यां बाणैश्चमूमुखे ॥ युद्ध १०१।२४,२५

हे पुरुषव्याघ्र ! आप बुद्धि नष्ट करने वाली और शोक उत्पन्न करने वाली इस चिन्ता को छोड़िये, क्योंकि युद्ध में चिन्ता बाणों के समान दुःख देती है ।

६२. किं ते न विदिता देवि लोकानां स्थितिरध्रुवा ।
दशाविभागपर्याये राज्ञां वै चञ्चलाः श्रियः ॥

युद्ध १११।८९, ९०

महारानी ! क्या आप नहीं जानतीं कि संसार की सभी वस्तुएं अनिश्चित हैं । परिस्थिति बदल जाने पर राजाओं की लक्ष्मी नष्ट हो जाती है ।

६३. मयैतत् प्राप्यते सर्वं स्वकृतं ह्युपभुज्यते ॥ युद्ध ११३।४०

मुझे जो कुछ भोगना पड़ रहा है वह सब पूर्व जन्म के कर्मों का ही फल है ।

६४. पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणामथापि वा ।
कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति ॥ युद्ध ११३।४५

श्रेष्ठ पुरुष को, पापी, पुण्यात्मा अथवा मृत्युदण्ड का अपराध करने वालों पर भी दया करनी चाहिए, क्योंकि ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जिसने कभी कोई अपराध न किया हो ।

६५. लोकहिंसाविहारणां क्रूराणां पापकर्मणाम् ।
कुर्वतामपि पापानि नैव कार्यमशोभनम् ॥ युद्ध ११३।४६

संसार में हिंसा, पापाचार और क्रूर कर्म करने वाले पापियों का भी कभी अशुभ नहीं करना चाहिए ।

६६. सौभ्रात्रं नास्ति शूराणाम् ॥ उत्तर ११।१४

शूरवीर पुरुषों के बीच भाई चारा नहीं होता ।

६७. सापराधोऽपि बालो हि रक्षितव्यः स्वबान्धवैः ॥ उत्तर १३।२०

यदि बालक अपराधी भी हो तो उसके सम्बन्धियों को उसकी रक्षा करनी चाहिए ।

६८. यो हि मोहाद् विषं पीत्वा नावगच्छति दुर्मतिः ।
स तस्य परिणामान्ते जानीते कर्मणः फलम् ॥ उत्तर १५।१९

जो मूर्ख विष पीकर भी उसे विष नहीं मानता उसे विषपान का परिणाम निकलने पर अपने कर्म का परिणाम पता चल जाता है ।

६९. वृद्धानां मृगशावाक्षि भ्राजते पुण्यसञ्चयः ॥ उत्तर १७।२१

मृगछौने की सुन्दर आंखों वाली बूढ़ी स्त्रियों को ही पुण्य संग्रह शोभा देता है, युवतियों को नहीं ।

७०. नहि शक्यः स्त्रिया हन्तुं पुरुषः पापनिश्चयः ॥ उत्तर १७।३२

स्त्री अपनी शारीरिक सामर्थ्य से पापी पुरुष की हत्या नहीं कर सकती ।

७१. दीक्षितस्य कुतो युद्धं क्रोधित्वं दीक्षिते कुतः ॥ उत्तर १८।१७

यज्ञ करने की दीक्षा ले लेने वाला पुरुष युद्ध नहीं कर सकता और ऐसे दीक्षित मनुष्य को क्रोध भी नहीं करना चाहिए ।

७२. संशयश्च जये नित्यम् ॥ उत्तर १८।१७

युद्ध में किस की विजय होगी यह सन्देह अन्त तक बना रहता है ।

७३. एवं बलिभ्यो बलिनः सन्ति राघवनन्दन ।
नावज्ञा हि परे कार्या य इच्छेच्छ्रेय आत्मनः ॥ उत्तर ३३।२२

हे रघुकुलनन्दन ! संसार में एक से एक बढ़कर बलवान् मनुष्य हैं । अपना भला चाहने वाले को दूसरों की अवहेलना नहीं करनी चाहिए।

७४. अशरीरः शरीरेषु वायुश्चरति पालयन् ।
शरीरं हि विना वायुं समतां याति दारुभिः ॥ उत्तर ३५।५९, ६०

वायु स्वयं शरीर धारण किये विना समस्त प्राणियों के शरीरों का पालन पोषण करता रहता है । वायु के विना शरीर सूखी लकड़ी जैसा हो जाता है ।

७५. वायुः प्राणः सुखं वायुर्वायुः सर्वमिदं जगत् ।
वायुना सम्परित्यक्तं न सुखं विन्दते जगत् ॥ उत्तर ३५।६०, ६१

वायु ही सब प्राणियों का प्राण है, वायु ही प्राणियों को सुख देता है और सम्पूर्ण संसार वायु से व्याप्त है । वायुरहित संसार सुखी नहीं रह सकता ।

७६. नरः प्रत्युपकाराणामापत्स्वायाति पात्रताम् ॥ उत्तर ४०।२४

पुरुष अपने उपकार का बदला आपत्ति आने पर ही चुका सकता है ।

७७. वृक्षस्यावज्ञया ब्रह्मंश्छिद्यन्ते वृक्षजीविनः ॥ उत्तर ५८।२०

ब्रह्मन् ! वृक्ष का तिरस्कार और उपेक्षा होने पर पेड़ के आश्रितों को हानि होती है ।

७८. बालेन पूर्वजस्याज्ञा कर्तव्या नात्र संशयः ॥ उत्तर ६२।२१

बच्चे को अपने से बड़ों की आज्ञा अवश्य माननी चाहिए ।

७९. उत्तरं न हि वक्तव्यं ज्येष्ठेनाभिहिते पुनः ॥ उत्तर ६३।६

बड़े भाई के बोलने पर फिर कोई उत्तर नहीं देना चाहिए ।

८०. बालानां तु शुभं वाक्यं ग्राह्यं लक्ष्मणपूर्वज ॥ उत्तर ८३।२०

हे राम ! बच्चों की अच्छी बात स्वीकार करनी चाहिए ।

८१. नह्यर्थास्तत्र तिष्ठन्ति न दारा न च बान्धवाः ।
सुप्रीतो भृत्यवर्गस्तु यत्र तिष्ठति राघव ॥ उत्तर ६४।६

हे राम ! अच्छी तरह सन्तुष्ट सेवक जिस संकट में साथ देते रहते हैं उसमें धन साथ नहीं देता, न स्त्रियां और न ही भाई बन्धु ।

८२. लोकपीडाकरं कर्म न कर्तव्यं विचक्षणैः ॥ उत्तर ८३।२०

बुद्धिमान् पुरुषों को समाज और राष्ट्र को हानि पहुंचाने वाला काम नहीं करना चाहिए ।

८३. किं धनेनाश्रमस्थानां फलमूलाशिनां सदा ॥ उत्तर ९३।१२

आश्रम में रहकर फल और कन्दमूल खाने वालों को धन से क्या काम ?

८४. सर्वत्रातिकरं भद्रे व्यसनायोपकल्पते ॥ सुन्दर २४।२१

भद्रे ! किसी बात की अति कर देना सदा दुखदायी होता है।

८५. मित्रभावेन सम्प्राप्तं न त्यजेयं कथञ्चन ।
दोषो यद्यपि तस्य स्यात् सतामेतदगर्हितम् ॥ युद्ध १८।३

जो व्यक्ति मित्रता करने के लिए आया हो उसे कदापि नहीं छोड़ना चाहिए चाहे उसमें कुछ बुराई भी हो, क्योंकि दोषपूर्ण व्यक्ति को आश्रय देना सज्जनों के लिए निन्दित नहीं है ।

८६. तीक्ष्णकामास्तु गन्धर्वास्तीक्ष्णकोपाश्च भुजङ्गमाः ।
मृगाणां तु भयं तीक्ष्णं ततस्तीक्ष्णक्षुधा वयम् ॥ किष् ५९।९

गन्धर्वों में कामवासना बहुत होती है, सांपों को क्रोध बहुत आता है । हरिण बहुत डरते हैं और हम गृधों (गिद्ध पक्षी) को बहुत भूख लगती है ।

८७. न साम्ना शक्यते कीर्तिर्न साम्ना शक्यते यशः ।
प्राप्तुं लक्ष्मण लोकेऽस्मिञ्जयो वा रणमूर्धनि ॥

युद्ध २१।१६. १७

हे लक्ष्मण ! साम नीति (शान्ति की नीति) से न तो यश मिल सकता है और न ही युद्ध में विजय ।

८८. **चतुर्णामाश्रमाणां हि गार्हस्थ्यं श्रेष्ठमुत्तमम् ॥** अयोध्या१०६।२२

ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास इन चार आश्रमों में गृहस्थ सर्वश्रेष्ठ है ।

सेवक

१. **यो हि भृत्यो नियुक्तः सन् भर्त्रा कर्मणि दुष्करे ।**
कुर्यात् तदनुरागेण तमाहुः पुरुषोत्तमम् ॥ युद्ध ११७

जो सेवक अपने स्वामी का बहुत कठिन कार्य भी बड़ी निष्ठा के साथ पूरा करता है और उस काम के साथ ही कोई और कठिन कार्य करता है वह सबसे अच्छा सेवक कहलाता है ।

२. **यो नियुक्तः परं कार्यं न कुर्यान्नृपतेः प्रियम् ।**
भृत्यो युक्तः समर्थश्च तमाहुर्मध्यमं नरम् ॥ युद्ध ११८

जो सामर्थ्यवान् सेवक किसी काम में लगा देने पर अपने स्वामी का अन्य कोई प्रिय काम नहीं करता वह मध्यम श्रेणी का सेवक होता है ।

३. **नियुक्तो नृपतेः कार्यं न कुर्याद् यः समाहितः ।**
भृत्यो युक्तः समर्थश्च तमाहुः पुरुषाधमम् ॥ युद्ध ११९

जो सामर्थ्यवान् सेवक किसी काम में लगा देने पर मन लगाकर वह काम नहीं करता वह निकृष्ट कोटि का सेवक होता है ।

४. **सहितो मन्त्रयित्वा यः कर्मारम्भान् प्रवर्तयेत् ।**
दैवे च कुरुते यत्नं तमाहुः पुरुषोत्तमम् ॥ युद्ध ६।८

जो पुरुष अपने मित्रों और बन्धु-बान्धवों से सलाह करके और ईश्वर का स्मरण करके कार्य करता है वह उत्तम पुरुष होता है ।

५. **एकोऽर्थं विमृशेदेको धर्मे प्रकुरुते मनः ।**
एकः कार्याणि कुरुते तमाहुर्मध्यमं नरम् ॥ युद्ध ६।९

जो व्यक्ति अकेले ही सोचता है, अकेले ही धर्म अधर्म का विचार करता है और अकेले ही काम करता है वह मध्यम श्रेणी का होता है।

६. **गुणदोषौ न निश्चित्य त्यक्त्वा दैवव्यपाश्रयम् ।**
करिष्यामि यः कार्यमुपेक्षेत् स नराधमः ॥ युद्ध ६।१०

जो पुरुष किसी काम की भलाई बुराई पर विचार नहीं करता और भगवान् की सहायता की कामना नहीं करता और काम शुरू करके उसे बीच में ही छोड़ देता है वह नीच पुरुष माना जाता है ।

७. **यः कृते हन्यते भर्तुः स पुमान् स्वर्गमृच्छति ॥** युद्ध ९२।९

जो सेवक अपने स्वामी के लिए जान दे देता है वह स्वर्ग जाता है ।

श्राद्ध

१. **अष्टकापितृदेवत्यमित्ययं प्रसृतो जनः ।**
अन्नस्योपद्रवं पश्य मृतो हि किमशिष्यति ॥ अयोध्या १०८।१४

लोग यही सोचकर अष्टका आदि श्राद्ध करते हैं कि श्राद्ध का दान उनके पितरों तक पहुंच जाएगा, किन्तु श्राद्ध में अन्न का नाश ही होता है, क्योंकि मरे हुए व्यक्ति अन्न नहीं खा सकते ।

२. **यदि भुक्तमिहान्येन देहमन्यस्य गच्छति ।**
दद्यात् प्रवसतां श्राद्धं न तत् पथ्यशनं भवेत् ॥ अयो० १०८।१०

यदि इस संसार में दूसरे का खाया हुआ भोजन किसी दूसरे व्यक्ति के शरीर में पहुंच जाता है तो परदेश जाने वालों के लिए भी श्राद्ध कर देना चाहिए, तब उन्हें रास्ते के लिए भोजन देने की जरूरत नहीं रह जायेगी ।

रामायण सूक्तिसुधा

सूक्तियों की दृष्टि से रामायण का अपना महत्व है। श्री सुभाष विद्यालंकार ने रामायण के सुभाषितों का विषयवार वर्गीकरण, संकलन और इनका सरल तथा स्पष्ट हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत कर इस संग्रह को बहुत उपयोगी बना दिया है। रामायण की सूक्तियों को इस प्रकार पहली बार प्रस्तुत किया गया है। यह सूक्तिसंग्रह सन्दर्भग्रन्थ का काम करेगा।

– पद्मश्री महामहोपाध्याय डॉ० सत्यव्रतशास्त्री